ISSN : 2321-3922
जुलाई– 2020
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 6 अंक–21

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई-सितम्बर - 2020
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी
कुन्दन अमिताभ

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–6, अंक–21
जुलाई-सितम्बर - 2020

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर–दिसम्बर– 2020 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	अनुभूतियों का दर्पण 'अपनी गठरी'–	डॉ. पिंकी कुमारी बागमार	06
समीक्षा	महादेवी के रेखाचित्रों का समाज–चित्रण	डॉ. गीता कपिल	08
ग़ज़लें	ग़ज़लें	आलोक भारती, चाँद मुंगेरी	11
समीक्षा	संन्यासी	डॉ. नीलोत्पल रमेश	12
समीक्षा	जीवन को आनन्दमय बनाने का सूत्र	मोती प्रसाद साहू	13
समीक्षा	शिक्षा और संस्कृति	विभुरंजन जायसवाल	14
समीक्षा	राष्ट्रपुरुष लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और 'गीता–रहस्य'	डॉ. विद्याकेशव चिटको	15
मुकरियाँ	मुकरियाँ	त्रिलोक सिंह ठकुरेला	16
दोहे	मैत्री के दोहे	प्रो. शरद नारायण खरे	16
समीक्षा	हिमांचल में बरसात का रोमांच	अनंत आलोक	17
कविताएँ	भविष्य, मँहगाई, गुणवत्ता	धर्मेन्द्र कुसुम	18
शोध आलेख	स्त्री–पुरुष के बीच: प्रेम और देह	सुभाषचन्द्र झा	19
कविताएँ	तुम मानो या न मानो	अशोक कुमार सिंह	25
कविताएँ	क्षणभंगुर, रचना	सूर्यप्रकाश मिश्र	25
परख	एक अदद कहानी	कृष्ण कुमार यादव	26
ऐतिहासिक तथ्य	योगेशचन्द्र चटर्जी : संघर्ष, संघर्ष और संघर्ष	उषा निगम	28
कविताएँ	दरअसल, नहीं बता पाऊँगा,	सुशांत सुप्रिय	30
कविता	नर से पशु की ओर	संतोष कुमार राय 'साँच'	30
लघुशोध	हिन्दी साहित्य में आंचलिकता और रेणु	डॉ0 वसीम राजा	31
कहानी	बैधा	दिलीप कुमार सिंह	33
कहानी	जिन्दगी – रेल की समानान्तर पटरी	मनोरंजन सहाय सक्सेना	35
कहानी	चन्दन की आँच	निर्मला तिवारी	43
कहानी	ध्रुवस्वमिनी	अरुण कुमार सिन्हा	46
कहानी	एक दीप धरम का	सुभद्रा मिश्रा	48
अभिमत	पल भर के लिए	डॉ. जितेन्द्र प्रसाद सिंह	50
लघुकथा	सब्सिडीवाला खाता	डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल	50
कविताएँ	मान लो मेरे मन, आकृति : विकृति, कैसे जिंदा रखूँ मैं यार को, इन्सानियत, मछली का स्वाद	सिद्धेश्वर	51
कविता	जिंदगी प्रतियोगिता है	शिवानंद सिंह 'सहयोगी'	52
कविता	कोविड 19	मीनाक्षी छाजेड़	52
लोकवाणी			

पराजय के बाद

तुमको लोग भूले जा रहे हैं
क्योंकि तुम जानते रहे हो
अपने अत्याचारों के कारण
और आज तुम हाथ खींचे हुए हो
कि तुम्हारे अत्याचारों को लोग भूल जाएँ
पर लोग तुम्हीं को भूले जा रहे हैं
करो कुछ जिससे कि वह शक्ति दुष्टता की
लोग फिर देखें और
लोग भयंकर मुग्ध हों
एक राष्ट्र के पतन का लक्षण है कि
वे जो जीवन भर परोपजीवी रहे
सत्ता के तंत्र में
आज उससे बाहर होकर
यह भ्रम फैला सकते हैं कि
वे किसी दिन यह समाज बदल देंगे
और अभी सिर्फ मौका देखते हुए बैठे हैं।

— रघुवीर सहाय

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

हमारा भारत एक बहुभाषी देश है। यहाँ 1652 मातृभाषाएँ हैं, किन्तु सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य एवं साहित्यिक संवेदना के संदर्भ में भारतीय साहित्य एक है। साहित्य का संबंध मानव की संवेदना से है। साहित्य वह साधन है, जिसने संवेदनाओं के माध्यम से प्राचीन और नवीन को एक शृंखला में समाविष्ट कर रखा है। हमारे साहित्य का मूल आधार ही अनंत संभावनाओं में है, जो कल्पना और भावना से भी परे है। यह एक निश्चित सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश में पल्लवित और विकसित होता है। किन्तु आज के बदलते परिवेश में साहित्य एक नये रूप में हमारे सामने है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रभाव, पुस्तकीय ज्ञान का बोझ और अभिभावकों की उपेक्षा का शिकार होती पीढ़ी का स्वाभाविक विकास जैसे रुक–सा गया है, समय की माँग के अनुरूप जीवन और समाज के बदलते परिदृश्य का आकलन करना और उसे कर्तव्य बोध की ओर निर्देशित करना साहित्यकार की सबसे बड़ी चुनौती है। साहित्यकार अपनी संस्कृति तथा परिवेशगत विचारों का भागीदार होता है और यही उसकी रचनाओं में प्रतिफलित होता है। वस्तुतः किसी भी देश–काल में लिखा गया साहित्य तत्कालीन समाज की दिशा–दशा, रहन–सहन, आचार–विचार को अभिव्यक्त करता है। भारतीय साहित्य की भारतीयता का चरमोत्कर्ष उसके भव्य और प्रखर मानवतावाद में दिखाई देता है। मानवतावाद की व्यापक धारणा नैतिकता और सौंदर्यबोध पर आधारित है, जिसके द्वारा मनुष्य में विद्यमान देवत्व को प्रकट किया जाता है। मानवता में कोई पराया नहीं होता। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही मानवतावाद के आधार सत्व हैं तथा साहित्य की यह अंतर्निहित भारतीयता भारत की संस्कृति का प्रतिबिम्ब है। साहित्यकार भारत की सांस्कृतिक विभिन्नता में भी विद्यमान एकता की सूक्ष्मता को पहचान लेता है। भाषा और साहित्य दोनों के भीतर समाज के सांस्कृतिक तत्व गूँथे रहते हैं। समय–समय पर जितनी मानव–मंडलियाँ भारत में आयीं, उन सबके अपने–अपने धर्म, रीति–रिवाज, आचार–विचार और अपने–अपने संस्कार थे। इतिहास साक्षी है कि ऐसी विषम परिस्थितियों में भारतीय साहित्यकारों द्वारा समय–समय पर ऐसे समाधान ढूँढ़ने का प्रयास होता रहा, जिससे विचारधारा या संस्कृति अथवा मानव–जीवन सौंदर्य प्रतिभा की भिन्नता समाप्त हुई है; क्योंकि साहित्य की मूल संवेदना एक ही है।

भारत में धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति, रहन–सहन आदि में विषमता दिखाई देती है। प्रत्येक राज्य की भाषा अलग–अलग है, जिनमें भी साहित्य का निर्माण होता है। भाषा व संस्कृति की भिन्नता के बावजूद उनमें मानवीय संवेदना, भौतिक मूल्य, सामाजिक समस्याएँ आदि में एकरूपता दिखाई देती है। अतः साहित्य ही वह प्रविधि है, जो विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त होने के बाद भी समानता एवं विषमताओं खोज करती है तथा मानवीय संवेदना एवं मनुष्य की जिजीविषा को प्रतिध्वनित करती है। आज अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, संरचनावाद, उत्तर आधुनिकवाद, दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श आदि विचारधाराओं ने विश्व को साहित्य की प्रेरणा दी है। हर देश के साहित्य में इनका अंतर्भाव कम–अधिक मात्रा में दिखाई देता है। इन विचारधाराओं का विकास साहित्यिक रचना–प्रक्रिया, भाषा संरचना, संस्कृति, दर्शन आदि में अभिव्यक्त होनेवाले साहित्य की आवश्यकता है। एक बात तो यह है कि साहित्यिक पत्रकारिता का क्षेत्र बहुत कठिन होते हुए भी हमारे संपादकों ने इस मार्ग को अवरुद्ध नहीं होने दिया है। अगर एक पत्रिका बंद हुई है, तो दूसरी खड़ी हो गयी है। इस प्रकार से यह कड़ी बनती चली गयी है। काफी वर्षों में अनेक पत्रिकाएँ ऐसी थीं जो हमारे लिए एक जरूरी पत्रिका थीं। लेकिन बंद हो गयीं तो और बहुत–सी पत्रिकाएँ निकल गयीं। मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि बंद होनेवाली पत्रिका का किसी ने स्थान ले लिया है। लेकिन यह जरूर है कि हमें बहुत कमी भी महसूस नहीं हो रही है और न उस बेचैनी को दूर करने के प्रयास में आते हैं। ऐसे में 'सुसंभाव्य' साहित्य पत्रिका को अगर मुख्यधारा की पत्रिका से जोड़ना न चाहते हैं, तो उसके समानांतर इसको महत्व देना होगा; क्योंकि यह पत्रिका साहित्यिक महत्व को प्रतिपादित करने को प्रयासरत है। यह साहित्यिक पत्रिका मेरा एक मिशन है, व्यवसाय तो कतई नहीं है। असल में साहित्यिक पत्रिका का संबंध रचनाकार की स्वप्नशीलता से होता है, उसकी सामाजिक दृष्टि से होता है, उसके रचनात्मक कौशल से होता है। इसमें कहानी, कविता, समीक्षा या अन्य लेख जो कुछ छपते हैं, उसके मूल में आम आदमी का दर्द होता है, रचनाकार का दर्द होता है, पाठक का दर्द होता है और इसी दर्द को रेखांकित करने के लिए इस पत्रिका का जन्म हुआ है, न कि संपादकत्व को स्थापित करने के लिए। आज मानदेय का जाल इतना फैल गया है कि बड़े लेखक साहित्यिक पत्रिकाओं की उपेक्षा करते हैं। लेखक को उदार होना चाहिए। वे ऐसी पत्रिकाओं को भी अपनी रचना अवश्य दें, जिनका उद्देश्य संकीर्णता से ऊपर देश और जनता की सेवा है। आपको याद होगा प्रायः पत्रिकाएँ निजी उद्योग के बतौर चलती थीं। संपादक ही संपादन से लेकर चपरासी तक काम स्वयं करता था। संपादकों के सामने देश सेवा और समाज–सुधार का एकमात्र खास मिशन होता था। पत्रिका पाठकों की संवेदनाओं को झकझोरती थी, स्त्री–पुरुष के बीच बदलते रिश्तों, परिवारों की टूटन, बढ़ते वैयक्तिक एकाकीपन को भी सामने लाती थी। आखिर क्यों?इसलिए कि तब के रचनाकार सूर ने अयोध्या में रहकर तो कृष्णलीलाएँ नहीं लिखी होंगी, कबीर समाज से अलग नहीं रहे होंगे, बल्कि उसी के सन्निपात में शक्कर की तरह घुले होंगे, निराला भी प्रकृति के सौरभ में ही पले होंगे। शुक्ल जी ने भी भिन्नता को जीया जरूर होगा, प्रेमचंद ने भी पूस की रात को खुले आसमां में गुजारा होगा। अर्थात् साहित्य वही है, हो हमारे आस–पास घूमता है। यह एक आदर्श समाज की रूपरेखा बतलाता है। यह हमें जीवन का असली सलीका सिखलाता है।

आज हम जिस विश्व में रह रहे हैं, वह पहले के विश्व से बहुत भिन्न है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आज परमाणु विध्वंस का खतरा मंडरा रहा है। आर्थिक समृद्धिवाले देशों में आंतरिक संघर्ष की संभावना दिखने लगी है। अपवादजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं। सैनिक समाधानों की तुलना में राजनीतिक समाधानों को तवज्जो दी जाती है। शक्ति और राजनीति आधुनिक कूटनीति में फँसती जा रही है। निरीह वर्ग परेशान हो रहे हैं। लेकिन इसका समाधान सभी जानते हैं, जो बहुत पुराना और आसान है। इसे चंद शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है। 'हम मिल–जुलकर मजबूत बनते हैं।' यह तभी संभव है, जब राजनीति में साहित्य का स्थान होगा। राष्ट्रीयता से अंतर्राष्ट्रीयता की ओर प्रयाण कर भूमंडलीयकरण, विश्वग्राम और विश्व नागरिकता की दिशा में साहित्य का ही कदम सबसे आगे है। यही वैचारिक और धार्मिक कट्टरता को दूर कर सकता है। सादर...।

समीक्षा

अनुभूतियों का दर्पण 'अपनी गठरी'

डॉ. पिंकी कुमारी बागमार
खड़गपुर, मेदिनीपुर (प.बं)
मो. 9475004249

'अपनी गठरी' डॉ.पंकज साहा की प्रथम काव्यकृति है।इसमें सन् 1974 ई. से लेकर 2020 तक की प्रकाशित–अप्रकाशित कविताएँ हैं। डॉ. पंकज साहा किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। डॉ. पंकज साहा की चार आलोचनात्मक कृति–एक कथासंग्रह एवं एक व्यंग्य कथा प्रकाशित है। देश की तमाम स्तरीय पत्रिकाओं में इनके लेख–आलेख प्रकाशित है। 'सन्मार्ग' समाचार पत्र में डॉ. पंकज साहा की व्यंग्य कथा, कविता, लघु कथा आदि पढ़ने को मिलती रहती हैं। डॉ. पंकज साहा झारखंड के राजमहल से लेकर पश्चिम बंगाल के खड़गपुर में हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते नजर आ रहे हैं। साहित्य के प्रति एकनिष्ठता और बच्चों में साहित्यिक रुचि जगाने का कार्य सदा ही करते रहते हैं।

डॉ. पंकज साहा ने 'अपनी गठरी' को काव्य संग्रह न कहकर काव्यनुमा रचनाएँ कहा है।इन्होंने कभी भी स्वयं को कवि के रूप में प्रतिष्ठित नहीं माना है।अपनी बात में वे लिखते हैं–''लेखन की शुरुआत मैंने कविता से ही की थी, पर जैसे–जैसे कविता की समझ विकसित होती गयी, यह बात समझ में आने लगी कि कवि कर्म बहुत आसान नहीं है। ...गठरी में वस्तुएँ बेतरतीव रखी होती हैं। फटे–पुराने कपड़ों के बीच कभी कोई अच्छा वस्त्र, कोई पुरानी चीज, कोई पुरानी तस्वीर, कोई पुराना खत मिल जाता है, तो मन खिल उठता है।गठरी की यही सुंदरता एवं सार्थकता है।''

'अपनी गठरी' में कुल 80 कविताएँ हैं।पहली रचना कबीर पर है। हिन्दी साहित्य में कबीर का बहुत महत्व है।कबीर सर्वाधिक प्रासंगिक कवि हैं, लेकिन बहुत कम हिन्दी विभाग है, जहाँ पर कबीर जयंती मनायी जाती हो। कबीर को केवल पाठ्यक्रम में ही रखा गया है, वो भी एक प्रोपेगेंडा की तरह। कबीर को याद करते हुए डॉ.साहा लिखते हैं–

''अंधकार में भटकते भेड़ों को
तुमने दिखाई
रोशनी की लकीर
मार खाये गालों पर
तुमने मली अबीर
शत–शत नमन
कबीरा!''(पेज 13)

यह हिन्दी साहित्य में पहली बार देखने को मिलता है कि कोई रचनाकार अपनी कविता का मंगलाचरण कबीर से करता है। 'नया पाठ' कविता में बदलते समय और समाज को कवि बहुत ही तीक्ष्ण गति से अवगत कराता नजर आता है। आज–कल बदलते समय में वर्णमाला का पाठ भी बदल गया है।'अ' से अनार, 'आ' से आम की पढ़ाई अब बदल गयी है। अब 'नया पाठ' में 'अ' का अर्थ अवाम है और 'आ' का अर्थ आयाम है। लेकिन समाज में क्रांति और बदलाव लाने के लिए नया पाठ बेहद जरूरी है।

''नया पाठ पढ़ाएगा
क्योंकि उसने
अपने अनुभव से
सीखा है
अगर बदलना है
समाज
तो सीखना होगा
अ से अनाज
आ से आवाज।''(15)

यहाँ पर हमें समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता एवं चोचलेपन से ऊबकर समाज को सही दिशा प्रदान करने के लिए कवि समय के साथ चलने का आह्वान करता है।

'जरूरत' शीर्षक कविता में बाजारवाद और उत्तर आधुनिकता के नंगेपन का चित्रण देखने को मिलता है। वर्तमान समय में लोग रिश्ते भी अपने फायदे या लाभ के लिए ही निभाते हैं। आजकल बूढ़े माता–पिता वर्तमान पीढ़ी के लिए बेकार हैं, बोझ हैं। अगर उनको उनके बच्चे अपने पास रखते हैं, तो सिर्फ स्वार्थ निहित है, मानवता या आदमियत नहीं।

''समय नहीं उनके पास
अपने बेटे से
स्नेह का नाता जोड़े
और फिर
बुड्ढा घर बैठे
रोटी क्यों तोड़े?
कंक्रीट के जंगल में
उत्तर आधुनिक मुखौटा
और अंचल पैसों की
पोशाक पहनकर जहाँ
आदमी बेमुरव्वत है
वहाँ ऐसे बूढ़ों की
बहुत जरूरत है।''(20)

भारत के संविधान पर सबसे अधिक प्रहारात्मक कविता नागार्जुन और धूमिल ने लिखा है और आजादी तथा संविधान की बातों में जन सरोकार का क्या लेना–देना है, इसपर व्यंग्य किया है।डॉ.साहा भी 'अंधड़ में संविधान' कविता में लिखते हैं–

''भौकते कुत्ते को
आँखें दिखाता है
खड़खड़ाकर फिर उड़ता है
औंधे मुँह
संसेक्स–सा गिरता
जिल्द का एक टुकड़ा
किसी ग्रंथ का
ग्रन्थ कहीं
अँधेरे में छिपा था
या किसी दुकान में बिका था
उस टुकड़े पर
सुनहरे अक्षरों में
संविधान लिखा था।''(21)

यहाँ पर संविधान का दायरा और भारतीय समाज के स्तर का चित्रण है। देश की आजादी के 73 साल बाद भी आम आदमी को वो अधिकार या सुख आखिर क्यों नहीं मिल पाया है। इसपर 'प्रश्न' शीर्षक कविता में जो रटे–रटाये शब्द हमें पढ़ाए जाते हैं, उस ओर डॉ. साहा ध्यान केन्द्रित करते हैं।यहाँ हमें धूमिल की कविता याद आती है।जो सवाल धूमिल 'बीस साल पूर्व' कविता में उठाये हैं, वह आज भी प्रासंगिक है। डॉ. साहा के शब्दों में–

''पहली पाठशाला में

कुछ रट्टो के बाद
'अ' से अजगर
'आ' से आम
का पाठ यह
रट गया था
पर किसी भी पाठशाला में
'क' से क्रांति
'म' से मुक्ति का पाठ
वह पढ़ नहीं पाया
और न यह समझ पाया
कि 72 वर्षों के बाद भी
आम पर काबिज अजगर
हट क्यों न पाया?''(22)

वर्तमान समय में एक नयी परंपरा की शुरुआत हिन्दी साहित्य में दिखलाई पड़ती है किसी भी रचना को कालजयी कहने की। इसपर व्यंग्य करते हुए डॉ. पंकज साहा लिखते हैं–

''कवि!
तुमने कल भी कहा था–
चारों ओर घना कोहरा है
आज भी यही कह रहे हो
कल भी कहोगे
हम कालजयी किसे माने
कोहरे को
या तुम्हारे शब्दों को?''(23)

वर्तमान समय में मानवता शर्मसार होती नजर आ रही है। आजकल लोग राजनीतिक लाभ के लिए मृत्यु को भी रंग देने लगते हैं। जिसे डॉ. साहा 'संवेदना की मौत' में उकेरे हैं–

''पर
उससे दुखद है
मृत्यु को रंग देना
मृत्यु पर जब रंग चढ़ता है
मौत संवदेना की होती है।''(24)

आजकल देशभक्ति पर भी लोग सवाल उठाते हैं। देश के तथाकथित बुद्धिजीवी को देशप्रेम राष्ट्रवाद शब्द से बहुत नफरत है। इन तथाकथित दोमुँहे सेकुलरों पर प्रहार करते हुए डॉ. साहा लिखते हैं–

''इसी बात पर विवाद है
क्या देशभक्त होना
अपराध है?
.....
देश भले तुम्हारे लिए माता है
पर आज सेकुलरिज्म और देशभक्त में
छत्तीस का नाता है
अपने देश के गुण गाओगे
तो तथाकथित सेकुलरों द्वारा
उपहास के पात्र बन जाओगे
अगर पाना है उनका प्यार
तो करो पाक की जय–जयकार।''(95–96)

'बापू के नाम पत्र' नामक कविता में डॉ. साहा गांधीवाद के नाम पर कमाने–खानेवाले पर प्रहार करते हुए वर्तमान भारत का बदलता चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करते नजर आ रहे हैं–जैसे बच्चों का मैदान से दूर होना, आजादी के बाद से आजतक घोटालों का सिलसिला जारी रहना, जगत गुरु कहलानेवाला देश आज नंगा होता दिख रहा है–

'बापू!
तुम्हारे नाम की टोपी लगानेवाले
राजघाट जानेवाले
तुम्हारे झूठी कसमें खा रहे हैं
नकली आँसू बहा रहे हैं
.....
बापू इंटरनेट ने हमारा जीवन कर दिया आसान
अब बच्चे पाकै, मैदान जाकर
नहीं होते हैरान–परेशान
वे घर में ही मोबाईल कंप्यूटर, लैपटॉप में
गेम खेल लेते हैं
हम भी फेसबुक व्हाट्सप ट्विटर में
बौद्धिक अबौद्धिक दंड पेल लेते हैं।''(98–99)

डॉ. साहा की पैनी नजर में समाज और राजनीति का सांस्कृतिक बदलाव का एक भी चित्र ओझल नहीं हुआ है। 'कॉमन मिनिमम प्रोगम' शीर्षक कविता में व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए राजनीतिक गठबंधन के मूल चरित्र को उभारते हैं–

''परीक्षा में आया प्रश्न–
संक्षेप में लिखें
कॉमन मिनिमम प्रोगाम पर
एक विद्यार्थी ने लिखा उत्तर–
'कॉमन मिनिमम प्रोग्राम
वह है सर,
जिसमें समर्थन देनेवाली
प्रत्येक पार्टी को
मिलता है मलाई खाने का समान अवसर।''(105)

इस प्रकार उदारता में भारतीय बैंकों ने पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने के लिए कर्ण की उदारता को भी पीछे छोड़ दिया–

''परीक्षा में आया एक प्रश्न
दानवीर कर्ण की उदारता पर
एक निबंध लिखें
एक छात्र ने लिखा–
इसपर क्या लिखूँ उत्तर
उदारता में भारतीय बैंकों ने
उनको भी पीछे कर दिया है सर!''

'अपनी गठरी' जो इस काव्य संग्रह का नाम है। उसमें कवि यह दिखाता है कि सभी को अपनी वस्तुएँ बहुत प्यारी लगती हैं–

''हल्की हो या भारी
अपनी गठरी सबको प्यारी
चाहे कोई उपहास करे
चाहे कोई मारे लंगड़ी
जीवन दौड़ में जीत उसी की
जिसने सच की राह न छोड़ी।''(35)

इस प्रकार से डॉ. साहा हमारे मन को टटोलते भी हैं और उसे कचोटते भी हैं। सलाह, विराधोभास (1–8), निरामिष दिवस, घोटाला, कवि का दर्द आदि कविताओं में समाज को जागृत करते नजर आते हैं।

समीक्षा

महादेवी के रेखाचित्रों का समाज–चित्रण

डॉ. गीता कपिल
ऐसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ
निवाई टोंक, राजस्थान

साहित्य एक तरफ आत्माभिव्यक्ति का साधन है, तो दूसरी ओर अपने सामाजिक सरोकारों के लिए चिह्नित होता है। हिन्दी का छायावादी साहित्य आत्माभिव्यक्ति का आख्यान रहा तो दूसरी ओर सामाजिक उन्नयन के उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। प्रस्तुत शोध आलेख छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों का सामाजिक चित्रण की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत करता है।

आधुनिक युग की मीरा, वेदना और पीड़ा की कवयित्री, रहस्यवादी कवयित्री आदि अनेक अभिधाओं से जानी जानेवाली छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का काव्य क्षेत्र में अन्यतम स्थान है। उनका काव्य जितना महत्त्वपूर्ण व प्रशंसित है, उतना उनका गद्य नहीं, जबकि गद्य साहित्य में उनके सामाजिक सरोकार अधिक व्यापक व समाज से प्रत्यक्ष जुड़े हुए हैं। सन् 1930 के आसपास हमारे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के साथ किसान, मजदूर व स्त्री आदि के हितों से संबंधित मुद्दे जुड़े और इनके लिए हुए जन–संघर्षों से साहित्य सर्वाधिक प्रभावित हुआ, उसमें यथार्थवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। इस दृष्टि से महादेवी वर्मा के रेखाचित्र विशेष महत्व रखते हैं। ''रेखाचित्रों में उनकी अनुभूति मात्रा प्रणयिनी की अनुभूति नहीं। उनमें मातृत्व की ममता, बहन का स्नेह और नारीत्व की विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। उनके जनजीवन में व्याप्त दुःख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न आदि के प्रति विराट सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता है, कहीं–कहीं विद्रोह भी है, किन्तु वह ममता और करुणा से अभिभूत है, किन्तु महादेवी वर्मा की कला में कहीं जन–जीवन और समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है तो इन रेखाचित्रों में ही, इसलिए महादेवी के साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।''1

इनमें से समाज के दीन–हीन, शोषित–दलित, आँसू और पीड़ा से बेकल समाज की प्रति केवल सहानुभूति व करुणा प्रदर्शित करके पीड़ा को दूर कर सके। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' उनके प्रमुख संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के संग्रह हैं। ये नितांत व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक विद्रूपताओं और अमानवीय स्थितियों पर लेखिका की पैनी दृष्टि के परिचायक हैं। 'अतीत के चलचित्र' के विषय में सूर्य प्रसाद दीक्षित का कथन है कि ''इन चलचित्रों में समाज के सर्वहारा वर्ग की झांकी है, उनके दुःख दैन्य की कहानी है, कुजड़ा, काछी, कुम्हार आदि पात्रों के कदर्थित जीवन की गाथा है, अभागिन, वेश्या, विधवा और विकलांग नारियों के जीवन की विडम्बना का स्वर है, पतित, जारज, वर्णसंकर, तथाकथित नीच नराधम संतानों का लेखा–जोखा है और 'दरिद्रनारायण' की कथा है।''2 वस्तुतः इन रेखाचित्रों में महादेवी वर्मा ने निम्नांकित सामाजिक विसंगतियों को उजागर किया है–

वैश्वीकरण के इस जमाने में हम भौतिक प्रगति में काफी आगे निकल गये हैं। शिक्षा ने हमारे समय और समाज को बदला है; परन्तु हमारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं दिखता। हमारे समाज में नारी के प्रति हिंसा और अमानवीयता अभी भी जारी है। महादेवी के रेखाचित्रों में नारी जीवन की विडम्बनापरक स्थितियों को उजागर ही नहीं किया गया है, अपितु नारी को यातनाएँ देनेवाले समाज की बखिया भी उधेड़ी गई है। बाल–विवाह भारतीय समाज की एक ऐसी परंपरा है, जिससे भारती स्त्रियों की दशा अत्यधिक दयनीय व दुर्बल हुई। यद्यपि शिक्षा के कारण आज विवाह की आयु में बदलाव आया है, तथापि कहीं–कहीं अभी भी बाल–विवाह प्रचलित है। 'भक्तिन' नामक रेखाचित्र में भारतीय समाज की इस प्रथा पर व्यंग्य करती हुई महादेवी वर्मा लिखती हैं–''पाँच वर्ष की वय में हंडिया ग्राम के एक गोपालक की सबसे छोटी पुत्रवधू बनाकर पिता ने शास्त्र से दो पग आगे रहने की ख्याति कमाई और नौ वर्षीया युवती का गौना देकर विमाता ने बिना माँगे पराया धन लौटानेवाले महारानी का का पुण्य लूटा।''3

हमारे समाज में पुरुष के लिए विधान है कि वह स्त्री के परलोकवासी होते ही दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, कितने भी विवाह कर सकता है; परन्तु एक पति के न रहने पर स्त्री के लिए सुख व सम्मान के सारे दरवाजे सदैव के लिए बंद हो जाते हैं और वह घर भर की दासी बनने को विवश हो जाती है। मारवाड़ी की किशोर विधवा बहू के माध्यम से महादेवी ने भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति का मार्मिक अंकन इस प्रकार किया–''उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी–साथ, बिना किसी प्रकार के आमोद–प्रमोद के मानो निरंतर बुद्ध होने की साधना में लीन थी।।''4 विधवा नारी का परिवार की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता, न प्रतिष्ठा होती है। बिट्टो ऐसी स्थिति को भोक्ता है। उसके वृद्ध पति को मृत्यु के नजदीक जानकर उनके 'दोनों पुत्रों ने आकर मकान, रुपया आदि अपनी धरोहर सँभालने का पुण्य अनुष्ठान आरंभ कर दिया। सुपुत्रों को यह तीसरी विमाता फूटी आँख नहीं सुहाती, अतः बेचारी बिट्टो का भविष्य पहले से अधिक अंधकारमय है।''5 सूचना प्रौद्योगिकी के इस दौर युग में आज भी मत मान्य है कि पुत्री पराया धन होती है तथा पुत्र ही पिता को स्वर्ग की सीढ़ी प्रदान करता है। यह मानसिकता पुत्र–पुत्रियों में भेद का सबसे बड़ा कारण है, इसलिए कन्या की कोख में ही निर्मम हत्या कर दी जाती है तथा पुत्र–रत्न की प्राप्ति के लिए गंडे–ताबीज, मंदिर–मस्जिद न जाने कहाँ–कहाँ मन्नतें माँगी जाती हैं। इतना ही नहीं, जन्मदात्री माता सर्वत्र सम्माननीय होती है, जबकि पुत्री की माता को उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, 'भक्तिन' नामक रेखाचित्र में महादेवी ने भारतीय समाज की इसी मानसिकता पर तीखा व्यंग्य किया है–''जब उसने गेहुएँ रंग और बटिया जैसे मुखवाली पहली कन्या के दो और संस्करण कर डाले, तब सार और जेठानियों ने ओठ बिचकाकर उपेक्षा की।... छोटी बहू के लीक छोड़कर चलने के कारण उसे दंड मिलना आवश्यक था।।''6

हमारी सामाजिक व्यवस्था वेश्या को ही घृणा से नहीं देखती, वरन् जब कभी जाने–अनजाने वह मातृत्व धारण करती है, तो उसकी संतान भी समाज की घृणा व तिरस्कार को झेलती है। 'अभागी बहू' रेखाचित्र की बहू के तिरस्कार का मुख्य कारण यही है। महादेवी समाज की इस हृदयहीनता पर चोट करती है–''समाज इन्हें न जाने कितने दीर्घकाल से, कितने ही उपायों द्वारा समझाता आ रहा है कि यह माता, पुत्री, पत्नी आदि 'त्रिगुणात्मक' उपाधियों से रहित जीवन मुक्त नारी मात्र है।''7

इस प्रकार इन रेखाचित्रों में महादेवी ने अनेक असहाय स्त्रियों की गाथाओं को अभिव्यक्ति दी है। इनके माध्यम से महादेवी ने इस पितृसत्तात्मक समाज में अन्याय और उत्पीड़न से घुटती छटपटाती नारियों की स्थिति को समाने रखा है और आज के नारी आंदोलन की पूर्व पीठिका तैयार की है।

महादेवी के रेखाचित्रों में विमाता द्वारा अपने सौतले बच्चों पर किए जानेवाले अत्याचारों की मार्मिक अभिव्यक्ति है। यह सत्य है कि सृष्टि में माँ का पद अद्वितीय होता है, विमाता उस पद की अधिकारिणी हो सकती है; परन्तु इसके उदाहरण विरले ही होते हैं। 'चीनी फेरीवाले' की माता की मृत्यु के पश्चात् जिस विमाता ने घर में प्रवेश किया, उसने दोनों भाई–बहनों के जीवन की दिशा

ही बदल दी। वह इतनी पाशविक और अर्थलोलुप है कि अपनी सौतेली बेटी को वेश्या के गर्हित कार्य करवाने से भी हिचकती नहीं। भाई प्रतिदिन अपनी बहिन के साथ होनेवाले दुष्कृत्य का साक्षी है–''बहिन का संध्या हाते ही कायापलट, फिर उसका आधी रात बीत जाने पर भारी पेरों लौटना, विशाल शरीर विमाता का जंगली बिल्ली की तरह हल्के पैरों के बिछौने से उछलकर उतर आना, बहिन के शिथिल हाथों से बटुए का छिन जाना और उसका भाई के मस्तक पर मुख रखकर स्तब्ध भाव से पड़े रहना आदि क्रम ज्यों के त्यों चलते रहे।''8 और इस क्रम में एक दिन ऐसा भी आता है, जब बहन वापस नहीं लौटती तथा हमेशा–हमेशा के लिए लुप्त हो जाती है। उसका छोटा भाई अपनी बहिन की तलाश में गिरहकटों तथा लुटेरों के चंगुल में फँसकर गिरहकटी की शिक्षा ही नहीं पाता, वरन् अनंत, असहाय यातनाएँ भी सहता है; परन्तु ''यदि दीक्षांत संस्कार के उपरांत विद्या के उपयोग का श्रीगणेश होते ही उसकी भेंट पिता के परिचित एक चीनी व्यापारी से न हो जाती, तो उस साधना से प्राप्त विद्वत्ता का क्या अंत होता है यह बताना कठिन है।''9

इसी प्रकार लेखिका की बाल्य सखी बिन्दा की विमाता के आते ही उसपर मानो दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा। उसकी स्थिति घर में ऐसी नौकरानी सदृश हो गयी, जो घर के सारे कार्य करने पर भी मालकिन की घुड़कियों, डाँट व मार से मुक्ति नहीं पाती। बिन्दा प्रतिक्षण विमाता के भय से ग्रस्त रहती। महादेवी उस भयग्रस्त बालिका का चित्र इस प्रकार खींचती है–''कहीं से कुछ आहट होते ही उसका विचित्र रूप,चौंक पड़ना और पंडिताइन चाची का स्वर कान में पड़ते ही उसके शरीर का थरथरा उठना, मेरे विस्मय को बढ़ा ही नहीं देता, प्रत्युत् उसे भय में बदल देता था और बिन्दा की आँखें तो मुझे पिंजड़े में बंद चिड़िया की याद दिलाती थी।''10 विमाता के अत्याचारों से बिन्दा को शरीर रहते मुक्ति नहीं मिल पाती, इसलिए ममत्व की प्यासी वह नन्हीं–सी बालिका रोग से शरीर छोड़कर अपने समस्त दु:खों से मुक्ति के लिए अपनी मृत माँ के आंचल की शरण लेने चल देती है।

वस्तुत: जिन बच्चों को देश व समाज का कर्णधार समझते हैं, इन प्रतिकूल व असह्य स्थितियों में वे किस सीमा तक हमारी आकांक्षाओं पर खरा उतरेंगे, महादेवी के रेखाचित्र हमें यह सोचने के लिए विवश कर देते हैं।

भारत एक धर्मप्रधा देश है। यहाँ की अधिकांश जनता धर्मभीरू है, फलस्वरूप यहाँ के समाज में अनेक धार्मिक संस्कार व्याप्त हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश आज हमारे अनेक धार्मिक संस्कार रूढ़ियों और जड़ परंपराओं में परिवर्तित हो गये हैं, जो समाज की प्रगति में बाधक ही नहीं अनेक अत्याचारों व अन्यायों के पर्याय भी बन गये हैं। ये जड़ परंपराएँ समाज के उच्च अथवा निम्न सभी वर्गों में व्याप्त हैं। महादेवी के रेखाचित्रों में उन धार्मिक विसंगतियों पर भी करारा व्यंग्य है। कल्पवास जैसे धार्मिक, सांस्कृतिक रिवाज के प्राचीन महत्व व उसके वर्तमान स्वरूप के संबंध में महादेवी कहती हैं–''किसी समय इस कल्पवास का कितना महत्त्व रहा होगा, इसका अनुमान लगाने के लिए इसका आज का समारोह भी पर्याप्त है। संभवत: उस समय देश के विभिन्न खंडों में रहनेवाले व्यक्तियों के मिलन उनके पारस्परिक परिचय, विचारों के आदान–प्रदान तथा सांस्कृतिक समन्वय का महत्वपूर्ण साधन रहा होगा।... आज इस संबंध में क्या और क्यों तो हम भूल चुके हैं, पर बिना जाने लीक पीटना धर्म बन गया है।''11 इसी प्रकार कल्पवासियों का नियम है कि वे आग नहीं तापेंगे, परन्तु महादेवी वर्मा ने देखा कि यह नियम भी आज दिखावा मात्र रह गया है।

हिन्दू समाज में गौ–पूजा, गो–दान तथा अन्न–दान आदि का विशेष महत्व रहा है; परन्तु आज अर्थ प्रधान युग में स्वस्थ गाय को अर्थ प्राप्ति के लिए कसाई के हाथों बेच दिया जाता है और दुर्बल गाय दान दे दी जाती है, ताकि गो–दान का यश भी मिल जाए और वृद्ध रोगी पशु से मुक्ति भी मिल जाए। हिन्दू धर्म के इस खोखलेपन पर बिबिया के माध्यम से इस प्रकार चोट करती हैं, वह ऐसी गाय–बधिया नहीं है, जिसे चाहे कसाई के हाथ बेच दिया जावे। चाहै वैतरणी पार उतारने के लिए महाब्राह्मण को दान कर दिया जाए।''12 वस्तुत: दान–पुण्य करनेवाला वर्ग कभी नि:स्वार्थ भाव से दान–पुण्य नहीं करता, वरन् वह अपने तुच्छ से तुच्छ दान के बदले पुण्य खरीदना चाहता है। प्रतिदिन गंगास्नान करनेवाले दानी भी महादेवी की पैनी दृष्टि से बच नहीं पाये हैं–''जैसे तिथि पर्वों पर कथावाचक के कथा कह चुकने पर श्रोता हाथ में रखे हुए अक्षत फूल फेंक देता है, वैसे ही वे धर्म खरीदने के लिए लाए हुए सस्ते अन्न में से कभी एक मुट्ठी चावल, कभी चने, कभी जो बूढ़े के सामने बिछे हुए अंगोछे पर बिखेरकर राह नापते।''13 भारत की जनता का स्वर्ग सुख के नाम पर भी भोली–भाली जनता का अत्यधिक शोषण किया गया। इसी स्वर्ग सुख का लालच मन्नू की माई का ससुर उसे देता है, ताकि वह उसका व उसके निकम्मे पुत्र का पेट भरने के लिए हाड़तोड़ परिश्रम करती रहे। वह चतुर वृद्ध अपनी बहू को समझाता है–''दो दिन का कष्ट और उसके बदले में अनन्तकाल के लिए स्वर्ग सुख भला कौन भकुआ ऐसा होगा, जो सौदे को सस्ता न समझे।''14

हमारे समाज में आज भी ऐसे ढोंगी साधु–महात्माओं की कमी नहीं है, जो धर्म के नाम पर भोली–भाली जनता को भ्रमित करते हैं और उनका शोषण करके विलासी जीवन व्यतीत करते हैं। ग्रामीण समाज अशिक्षित होने के कारण ऐसे साधुओं के आगमन को विशेष महत्व देता है। इनके संबंध में महादेवी कहती है–''तम्बाकू के पिंड जैसे काले शरीर में राख का अंगराग लगाकर, नकली जटाजूट का मुकुट धारण कर और चिमटे को राजदंड थामकर वे एक कुशासन पर आसीन होकर, इन याचकों के दरबार का संचालन करते।''15 ये ढोंगी साधु शरीर से ही नहीं मन से भी अत्यन्त कलुषित होते हैं। ये अपने भगवा चोले की आड़ में व्यभिचार जैसे अनेक असामाजिक कृत्यों को भी आसानी से छिपाकर समाज में श्रद्धा प्राप्त कर लेते हैं। इन भ्रष्ट साधुओं की ''स्त्री–याचकों के प्रति कृपा अस्वाभाविक रहती थी। कोई ग्राम वधू जब अपने पति की अवज्ञा या अपनी संतानहीनता की दु:खगाथा सुनाती, तब उनकजी गाँजे के नशे में अरुण आँखें और अधिक अरुण हो जाती है।''16 वस्तुत: इन साधुओं पर श्रद्धा रखनेवाला समाज अधिकांशत: अशिक्षित व अज्ञानी होता है, जो तर्क व यथार्थ से परे कोरी भावुकता व कल्पना में जीता है। महादेवी ने इन ढोंगी महात्माओं के विचित्र सेवकों व याचकों का बड़ा यथार्थ चित्र खींचा है–''किसी को बढ़ौती में पुत्र चाहिए। किसी को और अधिक धन की आवश्यकता थी। कोई अपने पड़ीदार को हराना चाहता। कोई अपने सगे भाई को विरक्त करने के लिए उच्चाटन मंत्र माँगता था।... कोई गिरवी गहने को हथियाने के लिए फर्जदार में चित्त भ्रम उत्पन्न करने का इच्छुक था। कोई बिना औषधी के ही रोगमुक्त होने की याचना करता।''17

हमारे समाज की विडम्बना है कि इसके एक वर्ग के पास तो अकूत धन–संपदा है और दूसरे वर्ग को एक वक्त की रोटी भी मयस्सर नहीं हो पाती। परिवार के भरण–पोषण के लिए यह वर्ग हाड़तोड़ परिश्रम करता है, फिर भी परिवार को भोजन–वस्त्रादि आवश्यक वस्तुएँ भी मुहैया नहीं करवा पाता। वस्तुत: महादेवी के रेखाचित्रों का मुख्य वर्ण्य–विषय यही दीनहीन निम्नवर्ग है तथा उनकी सहानुभूति भी सदैव इसी वर्ग के साथ रही है। पहाड़ी कुलियों के माध्यम से वे उस वर्ग की निर्धनता का मार्मिक चित्र इस प्रकार खींचती है–''पर्वतीय पथ और पत्थरों की चोट से टूटे हुए नाखून और चुटीली उंगलियों के बीच में ढाल बनी हुई मूंज की चप्पल मानो मनुष्य को पशु बनाकर भी खुर न देनेवाले परमात्मा का उपहास कर रही थी। पाँव से दो बालिश्त ऊँचा और ऊनी–सूती पैबन्दों से बना हुआ पैजामा मनुष्य की लज्जाशील की विडम्बना जैसा लगता था। कभी से कभी मिले हुए पुराने कोट में नीचे के मटमैले अस्तर की झाँकी देती हुई ऊपरी तह तार–तार फटकर झालदार हो उठी थी और अब

अपने पहननेवाले को एक जन्तु की भूमिका उपस्थित करती थी।''18

वास्तव में निर्धन परिवारों में व्यक्ति अपने जीवन से अधिक मूल्यवान और दुर्लभ उन वस्तुओं को मानने लगता है, जो उसके जीवन–निर्वाह के लिए साधन रूप में उसके पास होती है। इन परिवारों के बच्चे भी असमय ही बड़े हो जाते हैं। बालक मन्नू भी जानता है कि उसका पिता निकम्मा है, दादा भीख माँगता है और माँ किसी तरह सबके भोजन की व्यवस्था करती है। इसलिए ''माँ कभी पुराने और कभी सस्ते मोटे कपड़े को लंबा और बेड़ौल कुरता उलटी–सीधी खोंपे भरकर सी और उसे मैला न करने के संबंध में इतना उपदेश देती रहती है कि बालक कुरते को शरीर से अधिक मूल्यवान समझने लगता है। चाहे आँधी–पानी हो, चाहे लू–धूप हो, वह सदा कुरते को उतारकर सुरक्षित स्थान में रखने के उपरांत ही साथियों के साथ खेलता है।''19

यों तो महादेवी के रेखाचित्रों के अधिकांश चरित्र गरीबी और भूख से जूझते दिखाई देते हैं, किन्तु लछमा नामक पहाड़ी युवती की हृदयकंपित करनेवाली दर्दगाथा वर्तममान सामाजिक व्यवस्था की हृदयहीनता का चित्र तो है, साथ ही यह सोचने को भी विवश करती है कि वह व्यवस्था गरीबों को पशुओं से भी निकृष्ट समझती है। लछमा महादेवी को बताती है कि ''जब बहुत भूखा हुआ, तब पीली मिट्टी का एक गोला बनाकर मुँह में रखा और आँख मुंदकर सोचा लड्डू खाया। बस फिर बहुत–सा पानी पी लिया और सब ठीक हो गया।''20 वस्तुतः आज हमारा देश निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। हमारी अर्थव्यवस्था की विकास दर भी निरंतर बढ़ रही है और हम विकसित देशों की पंक्ति में अपना नाम दर्ज करवाने की होड़ में है; परन्तु हमारे देश के निम्न तबके की स्थिति आज भी बहुत अधिक नहीं बदली है, देश की आर्थिक प्रगति का लाभ मुट्ठीभर लोगों को ही मिला है। महादेवी के रेखाचित्रों में ये निम्नवर्ग उनकी असीम सहानुभूति का भागीदार है।

महादेवी के इन रेखाचित्रों में स्थान–स्थान पर उच्चवर्ग की अमानवीयता तथा हृदयहीनता का भी परिचय मिलता है। अपने लाभ तथा स्वार्थ के लिए यह वर्ग सारी नैतिकता और मानवीयता की बलि चढ़ा देता है। निर्धन वर्ग इस वर्ग के लिए पशुतुल्य होता है। 'जंगबहादुर' नामक रेखाचित्र में महादेवी ने इस धनाढ्य वर्ग की हृदयहीनता और स्वार्थहीनता का बड़ा यथार्थ चित्र अंकित किया है–''यात्री भी एक रुपया प्रतिदिन देकर कुली के खरीदता है, इसलिए लाभ की दृष्टि से तीन–दिन का रास्ता एक दिन में तय करने की इच्छा स्वाभाविक है, अन्यथा वह घाटे में रहेगा। यात्री तो बैठा–बैठा ऊँघता रहता है, पकवान, सूखे मेवे आदि उसके साथ होते हैं। अतः अधिक थकावट या अधिक भूख का प्रश्न ही नहीं उठता, पर वह कुलियों के विराम और भोजन के समय में से घटता रहता है। सवेरे ही कह देता है कि बीस मील का रास्ता तय करना होगा,चाहे जिस तरह चलो, पर शाम तक इतना ही चलने पर मजदूरी काट ली जाएगी और बेचारे मनुष्य पशु हाँफ हाँफकर मुँह से फिचकुर हुए दौड़ते हैं।21

महादेवी द्वारा चित्रित यह उच्चवर्ग जहाँ हृदयहीन, स्वार्थी, अमानवीय, ईर्ष्या, द्वेष, झूठ, बेईमानी आदि विकारों से ग्रस्त है, वहीं निम्नवर्ग अनेकानेक मानवीय गुणों–मानवीयता, अपनत्व बोध, दया, करुणा, उत्तरदायित्व बोध, कर्मठता से युक्त दिखाई देता है। महादेवी शिष्ट, सभ्य तथा निर्धन समाज के प्रवृत्तिगत वैषम्य को इस प्रकार करती हैं–''एक सम्भ्रान्त परिवार की वृद्ध माता ने बताया था कि उसका लड़का जब–तब उसपर हाथ चला बैठता है और मातृत्व की दोहाई देने पर उत्तर मिलता था... वह जमाना गया, जब तुम सबसे पैर पुजाती थी, पैदा किया तो अपने शौक के लिए किया... इसी कारण हम तुम पर चंदन–चावल चढ़ाते–चढ़ाते जन्म बिता दिया। जब जन्मदात्री के संबंध में मनष्य इतना शिष्ट हो उठा हो है तब सहोदरता विषयक शिष्टता की चर्चा करना व्यर्थ होगा, जंगबहादुर का अनुज इतना प्रगतिशील नहीं हो पाया, अतः बड़े भाई से पैर दबवाना उसे शिष्टाचार के विरुद्ध जान पड़े तो आश्चर्य नहीं।''22

यद्यपि यह वर्ग जीवन की बुनियादी जरूरतों से वंचित है, परन्तु मानवीयता रहित नहीं, अपने लाभ व स्वार्थ से ऊपर उठकर वह यह सदैव इंसानियत और परोपकार को महत्व देता है। महादेवी बद्रीनाथ ले जानेवाले उन कुलियों को स्वामिभक्त और सेवा–भावना से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। ये ''पहाड़ी कुली अपने देश–परिवार और नवजात शिशुओं को त्याग 'दो पैसे' कमाने जाते हैं और इस कमाई का मूल्य अक्सर अपने प्राणों के बलिदान से भी चुकाना पड़ता है, वे इस कमाई के दौरना भी स्वार्थ से ऊपर श्रेष्ठ मानव बने रह सकते हैं, यह आश्चर्यजनक नहीं, यह सोचने को विवश भी करता है कि मानवीय व्यक्तित्व को सीधे–सीधे अर्थ–संबंधों से जोड़कर उसकी व्याख्या करनेवाले कितने अज्ञानी और भोले हैं।''23

''इसी प्रकार पहाड़ी युवती लछमा ससुराल से तिरस्कृत होने पर अपने माँ–बाप का नहीं, अपने भाई के नवजात शिशु का उत्तरदायित्व वहन करती है, गुंगियाँ गुंगी होते हुए भी अपनी सौत के मर जाने पर उसके बालक का अपने पुत्र समान लालन–पालन करती, मन्नू की माई कठोर परिश्रम करके अपने निकम्मे पति और बूढ़े ससुर के भोजन की व्यवस्था करती है तो सबिया अपने व्यभिचारी पति की अंधी माँ की सेवा करती है। महादेवी ने सभ्य–शिष्ट तथा दीन–वंचितों के समाज में व्याप्त भावों के अंतर को भली–भाँति महसूस किया है, तभी तो वे लिखती हैं, ठकुरी बाबा जैसे लोगों का 'बाह्य जीवन दीन है और हमारा अंतर्जीवन रिक्त।''24

अपने इन रेखाचित्रों में महादेवी ने शिष्ट व नागरिक समाज में होनेवाले कवि–सम्मेलनों के माध्यम से कुलीन संस्कृति और लोक संस्कृति के फर्क को बड़े तीखेपन के साथ उभारा है। कल्पवास के समय ठकुरी बाबा की मंडली के साथ महादेवी ने ग्रामीण समाज के साथ बैठकर भक्ति तथा कबीर, सूर व तुलसी के पदों का भरपूर आनंद लिया। यद्यपि उस मंडली में न कोई सधा गायक था, न उनके स्वर में लोच था न कंठों का माधुर्य, फिर भी तन्मय कर देने का अद्‌भुत भाव था। व्यक्तिगत राग–द्वेषों से ऊपर उठानेवाले ये गीत अपने भावों में अनूठे थे, जिन्होंने महादेवी को भी भाव–विभोर कर दिया।

इसके विपरीत कवि–सम्मेलनों में तन्मय करने की नहीं चमत्कृत करने की शक्ति होती है। यहाँ कवियों का उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन करके अधिकाधिक धन एकत्रित करना होता है। कभी–कभी तो ये कवि–सम्मेलन आठ–आठ घंटे तक चलते हैं, फिर भी कवि के भाव श्रोताओं के मन के साथ जुड़ नहीं पाते और कवि तथा श्रोता दोनों की स्थिति बाजीगर और तमाशबीन सदृश हो जाती है। अंततः श्रोता निराश होकर घर लौटता है। वास्तव में कवि सस्ती लोकप्रियता और आर्थिक लाभ के लिए गला फाड़–फाड़कर काव्यपाठ तो करते हैं; परंतु उन्हें न तो कविता के भावों की चिंता होती है, न ही श्रोताओं के आनंद की। महादेवी के मत में, ''हमारे सभ्यता दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानंद छिछला, उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजन मात्र रहता है।''25 इसके विपरीत चारणों की वंश परंपरा में पैदा होनेवाले आशुकवि व गायक ठकुरी बाबा है, जो पूँजीवादी युग में अर्थ की चिंता से रहित स्वान्तः सुखाय के लिए कहीं किसी के बुलाने पर विरहा या आल्हा–ऊदल सुनाने चल देते। इसलिए अर्थ की दृष्टि से ठकुरी बाबा सुदामा ही रहे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि महादेवी के रेखाचित्र उनके गहरे सामाजिक सरोकारों के परिचायक हैं और गीतिकाव्य की प्रणयिनी कवयित्री की सामाजिक संवेदना और सहानुभूति को व्यक्त करते हैं। इनमें तद्‌युगीन समाज ही नहीं, वर्तमान समाज का भी प्रतिबिम्बित रूप साफ देखा जा सकता है। वस्तुतः इनमें जिन–जिन सामाजिक समस्याओं व विसंगतियों को उजागर करने का प्रयास किया है, वे आज भी कमोवेश जस–की–तस हैं। आज

जबकि दलितों, पीड़ितों, शोषितों के प्रति हमारी सहानुभूति व पक्षधरता लगभग समाप्त–सी हो गयी, ऐसे समय में महादेवी के रेखाचित्र हमारे अंदर इस वर्ग के प्रति सहानुभूति ही नहीं पैदा करते, वरन् समस्त सामाजिक व्यवस्था को बदलने की बेचैनी भी पैदा करते हैं। वस्तुतः इन रेखाचित्रों में लेखिका ने उन सवालों को बड़ी हमदर्दी के साथ उकेरा है, जिन्होंने समाज के एक वर्ग को तो सर्व सम्पन्न बना रखा और दूसरे वर्ग को अभावों, पीड़ाओं और कष्टों से व्याकुल।

संदर्भ :

1. महादेवी : चिंतन व कला, सं. इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1965, पृ. 151
2. महादेवी का गद्य, सूर्य प्रसाद दीक्षित, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008, पृ. 10
3. स्मृति की रेखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 28
4. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 28
5. वही, पृ. 31
6. स्मृति की रेखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 8–9
7. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 75
8. स्मृति की रेखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 24
9. वही, पृ. 25
10. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 35–36
11. स्मृति की रेखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 24
12. वही, पृ. 90
13. वही, पृ. 40
14. वही, पृ. 47
15. वही, पृ. 118
16. वही, पृ. 118
17. वही, पृ. 118
18. वही, पृ. 29
19. वही, पृ. 43
20. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 101
21. स्मृति की रेखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 33
22. वही, पृ. 35
23. महादेवी के रेखाचित्र, मक्खनलाल शर्मा, प्रेमशील प्रकाशन, आजादपुर, दिल्ली, 2002, पृ. 75
24. स्मृति की रेखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 80–81
25. वही, पृ. 80–81

ग़ज़लें

आलोक भारती,
मेन रोड जयनगर
मधुबनी,मो0 8392350609

सर्दी जुकाम के मारे थे तुम कभी
किया अटैक बुखार ने भी तुम पे अभी

कोरोना मरीज कहीं तुम भी तो नहीं
सम्भल जा हउसे होगा बेहतर तभी

गले में खाँसी तो मास्क पे भाय
लौटे हो तुम भी विदेश से अभी–अभी

चले आये औरों की आफत बन क्यूँ
कायदा कुछ जानते नहीं जनाब अभी

काश होती खुशी तुम्हें इमदार देके गर
करते अपनी औरों की सुनते नहीं कभी

सुनो आवाज वक्त की रही जिंदगी भर
करो कुछ ऐसा मक़सद मुल्क हित का भी।

बताकर पहले चली आती तो बेहतर था
देकर खबर सभी को आती तो बेहतर था

कब आयी तू पता नहीं था किसी को मगर
आइसोलेशन साथ लाती तो बेहतर था

सजता है खूब माथे का दुपट्टा तुझपे गर
कटाकर मास्क बना लेती तो बेहतर था

वेस बहाना बनी साफ सफाई अब जोकि
उकद में जाँ निकल जाती तो बेहतर था

लॉकडाउन बनी सुरत ए जंग की ऐसे
कैदी आवाम सुकून देती तो बेहतर था।

जाति धर्म भेद मिटा ले आयी अजब सौगात
मुल्क में आफत न बरपाती तो बेहतर था

डरे सहमे लोग, देखे करतूत तेरी यूँ
रोज कुछ नया फरमाती तो बेहतर था
आधा छूट गया।

चाँद मुंगेरी
बोकारो इस्पात नगर, बोकारो
मो. 9204093040

अगर, परवाह है सच्ची
समझ लो चाह है सच्ची
सवालों के परे हैं हम
हमारी राह है सच्ची
दिलों को छूतीं जब ग़ज़लें
निकलती वाह है सच्ची
सुनो उखड़ी हुई साँसें
दिखातीं आह है सच्ची

2.

आपको सच बताता रहा
ज़ख्म अपने दिखाता रहा
आपने कुछ सुना ही नहीं
हाल अपना सुनाता रहा
जुल्म हमको रूला के गये
वक्त केवल मनाता रहा
हम बिखरते रहे टूटकर
हर सितम बस रुलाता रहा
याद रह–रह के आती रही
दर्द रह–रह सताता रहा
नींद से आप जागे नहीं
चीखकर मैं जगाता रहा
जबसे चुभने लगी ये फिजा
चाँद खुद को बचाता रहा।

समीक्षा

संन्यासी

डॉ. नीलोत्पल रमेश
बुध बाजार, गिद्दी ए, हजारीबाग
मो. 9931117537

'संन्यासी' अनिता रश्मि का चौथा कहानी संग्रह है। इसके पूर्व भी इसके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे कहानी संग्रह हैं– 'उम्र–दर–उम्र', 'लाल छप्पा साड़ी' तथा 'बाँसुरी की चीख'। इनके दो उपन्यास 'गुलमोहर के नीचे' और 'पुकारती जमीं'; एक यात्रा वृत्तांत 'ईश्वर की तूलिका' भी प्रकाशित हो चुके हैं।

अनिता रश्मि की कहानियों का विषय विविधवर्णी है। इनमें हमारे आस–पास की समस्याएँ तो हैं ही, झारखंड के आदिवासी परिवेश का वर्णन भी है और किन्नरों के जीवन संदर्भ भी हैं। मछुआरों की जीवन–शैली भी इनकी लेखनी से वर्णित हो चुकी है। इनकी अधिकांश कहानियाँ पूर्व दीप्ति–प्रभाव के माध्यम से आगे बढ़ती है। ये पाठकों को किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाती। शुरू में पाठक थोड़ा खिन्न हो सकता है, लेकिन ज्यों–ज्यों कथा आगे बढ़ती जाती है, पाठक उसमें डूबता जाता है। ...और अंत होते–होते पाठक को बहुत कुछ सोचने पर विवश कर देती हैं ये कहानियाँ।

'संन्यासी' में कुल सतरह कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें अधिकांश कहानियाँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इन्हें पाठकों का अपार स्नेह मिल चुका है।

'संन्यासी' कहानी में अनिता रश्मि ने सामान्य संन्यासियों से भिन्न किन्नरों के जीवन को चित्रित किया है। किन्नरों की समस्याओं को लेकर अनेक कहानी संग्रह और उपन्यास हिंदी साहित्य में प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन इस कहानी में लेखिका ने जिस समस्या की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया है, वह अन्यत्र मुझे पढ़ने को नहीं मिला।

'संन्यासी' कहानी की चंपा बड़े घर में पैदा होने के बावजूद वहाँ क्यों नहीं रह सकी; क्योंकि वह जन्मजात किन्नर थी। परिवार के लोगों ने उसे बचपन में ही किन्नरों के हवाले कर दिया था।

रवि...मुख्य पात्र के जन्म के समय किन्नरों ने नाचगान किया था। उसके जन्म का जश्न मनाया था, लेकिन ज्यों–ज्यों रवि बड़ा होता जाता है, उसमें औरतपन के हावभाव आने लगते हैं। अंततः वह किन्नर समाज से दीक्षित होकर उन्हीं के बीच रहने का फैसला लेता है। उसकी गुरु चंपा ही होती है। रवि दीक्षित होते ही 'काजल' बन जाता है। फिर किन्नरों की मंडली का सदस्य बन उन्हीं की तरह जीवन गुजारने को अभिशप्त हो जाता है। काजल की मृत्यु के बाद उसे जलसमाधि दी जाती है। इसी जलसमाधि के आधार पर लेखिका ने इस कहानी का शीर्षक संन्यासी रखा है। किन्नर किसी धर्म–संप्रदाय को नहीं मानते। उनका अपना ही धर्म है, व्यवहार है और रहन–सहन है। उसी के आधार पर वे अपनी जिंदगी गुजार देते हैं। यह कहानी समाज की सबसे बड़ी समस्या की ओर पाठकों का ध्यान दिलाने में सफल रही है। जलकुंभी के बहाने अनीता रश्मि ने मछुआरों की जीवनशैली के साथ एक प्रेमकथा का वर्णन किया है। यह वह प्रेम है, जो विधवा रमुली के साथ पवन का होता है। लेकिन समाज में लोग इसे मान्यता देने को तैयार नहीं होते। उन्मादी भीड़ उन्हें जान से मारने पर आमदा है। इसी बीच पुलिस आकर उन्हें साथ ले जाती है। लेकिन उनका जीवन–मरण का संघर्ष जारी रहता है। अस्पताल में दोनों को बेड नहीं मिलने पर जमीन पर ही रखकर उनका इलाज शुरू कर दिया जाता है। एक दिन रमुली का मुँह, नाक अस्पताल के चूहे न काट खाया। इस कहानी में लेखिका ने अस्पतालों की बदहाली का भी वर्णन किया है। उन्होंने एक जगह लिखा है–'आई.सी.यू. की भीड़....आई.सी.यू. के नाम पर कलंक! एक भी सीट खाली नहीं, न महिला वार्ड, न ही पुरुष वार्ड में। यही कारण है कि आनन–फानन में पवन और रमुली का इलाज किसी तरह शुरू कर दिया जाता है। सिर्फ खानापूर्ति के लिए इस तरह दोनों ही मौत को गले लगाने पर विवश हो जाते हैं।

'चश्मेवाली दो गहरी आँखें' में लेखिका ने लावारिश बच्चों की बदहाली का वर्णन किया है। इसी बदहाली को नयी जिंदगी देती 'अम्बा बिल्डिंग' का भी वर्णन है। एक ममतालु माँ लावारिश बच्चों को नवीन जिंदगी देने में लगी है, इसका जीवंत चित्रण लेखिका ने इस कहानी में किया है।

'चिड़िया, पतंग और अंकु' में कथाकार ने वहशी की शिकार अंकु की मानसिक स्थिति का चित्रण किया है। अंकु उस दर्दनाक घटना को भूल नहीं पाती है। वह पागलपन की हद तक चली जाती है। हमारे समाज में ऐसे–ऐसे भेड़िये हमारे आस–पास हैं, जो अंकु जैसी प्रगतिशील लड़की को पागल बना देते हैं। शिकार की तलाश में सदा लगे रहते हैं। वे स्वाभाविक मर्यादा को कुंद बनाते जा रहे हैं। अंकु की माँ की चिंता है, बेटी को पुनः राह पर लाना। वह सफल भी होती है। यही है चिड़िया, पतंग और अंकु।

'ओस की पहली बूँद' कहानी के माध्यम से अनिता रश्मि ने सांप्रदायिक सौहार्द कायम करने की कोशिश की है। इन्होंने सांप्रदायिक सद्भावना को बचाने में समाज के लोगों की अहम भूमिका का जिक्र भी किया है। ऐसे लोगों के बल पर ही सांप्रदायिक सद्भावना बनी हुई है और हमारी एकता कायम है। नहीं तो यह समाज कब का टूट गया होता। रेखा के कार्यकलाप के द्वारा लेखिका ने एक मजबूत समाज का निर्माण किया है। इसकी आवश्यकता आज के समय में महसूस की जा रही है। यह कहानी पाठकों को राह दिखाने का कार्य करती दीख रही है।

'एक प्रेमकथा ऐसी भी' डायरी शैली में लिखी गई एक सफल दाम्पत्य की प्रेम कहानी है। एक दंपति मधुप और सुरभि हैं, जिनका प्यार उम्र के साथ बढ़ता जाता है। यह कहानी दांपत्य के सफल होने की सीख पाठकों को देती है। आज के भागमभाग की दौड़ में टूटते दांपत्य के बंधन को मजबूती प्रदान करती है यह कहानी।

'अंतर' में बाढ़ की विभीषिका के बीच जद्दोजहद करते एक गाँव की कहानी लिखी गयी है। बाढ़ सब कुछ तबाह कर देती है। वहाँ की जिंदगी को अवरुद्ध कर देती है। इसे सामान्य होने में महीनों लग जाते हैं। गंगा की बाढ़ न जाने कितनों को काल–कवलित कर जाती है, कितनों को उजाड़ देती है। फिर भी यहाँ लोगों में गजब की जिजीविषा दिखाई पड़ती है। यह कहानी मर्म को झकझोरने में सफल हुई।

'शरबतिया का गोप' के माध्यम से कहानीकार ने झारखंड में फैलते आतंकवाद के जड़ की पड़ताल करने की कोशिश की है। ये आतंकवादी बेगुनाहों की हत्या करके अपने मिशन को अंजाम देते दिखाई पड़ते हैं। गोप का निश्छल प्रेम इसकी बलि चढ़ जाता है। प्रेमिका शरबतिया भी शिकार हो जाती है, साथ ही गोप की बहनें भी। यहाँ की आबो हवा भी बारूदी गंध से गंधाने लगती है। अब झारखंड इससे अछूता नहीं रहा।

'बुद्धं शरणं गच्छामि' में लेखिका ने एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया है, जो अपने पिता की ऐशो आराम की जिंदगी के राज को जान लेने के बाद खुद भी अपराध की दुनिया में लिप्त हो जाता है। बाद में वह बुद्ध की शरण में आना चाहता है, जहाँ शान्ति है, आराम है, चैन है। वह बोधगया चला जाता है। इससे साफ जाहिर होता है, आज भी बुद्ध की प्रासंगिकता बरकरार है। इन्हीं के रास्ते पर चलने से देश की नींव मजबूत होगी।

संन्यासी की अन्य कहानियाँ यथा 'टूटती रोशनियों के बीच 'घुरपेंच', 'छिन्न मस्तिका' आदि भी पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुई हैं।

अनिता रश्मि की कहानियों में झारखंडी संस्कृति की खुशबू, यहाँ के लोगों के बदलते जीवन के स्वर भी हैं। यहाँ के लोगों की संघर्ष गाथा भी है। कुल मिलाकर कहानियाँ और पात्र अपना प्रभाव डालने में सफल हैं। अब अनिता रश्मि से और भी बेहतर कहानियों की उम्मीद की जा सकती है। प्रूफ की अशुद्धियाँ नहीं है। पुस्तक की छपाई साफ–सुथरी है।

संन्यासी : पूनम प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य 395

समीक्षा

जीवन को आनन्दमय बनाने का सूत्र देता :
जीना इसी काम नाम है

मोती प्रसाद साहू
1/20 महरौली,
नई दिल्ली–30

बाल साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर राजकुमार जैन राजन जी का सद्य प्रकाशित आलेख संग्रह 'जीना इसी का नाम है' मुझे पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इसमें संगृहीत सभी 29 आलेखों को केवल आलेख नहीं, अपितु ललित आलेख कहना उचित होगा। आलेख पढ़ते वक्त मुझे लगा–मैं कोई पुस्तक नहीं, अपितु किसी महान व्यक्तित्व के अनुभवों को निकट से समझ रहा हूँ। राजन जी कवि, लेखक के साथ ही कई नामचीन साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादन की जिम्मेदारी भी उठाते हैं। संग्रह के सभी आलेख उन्हीं साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकीय आलेख हैं, जो कभी समसामयिक विषयों का अभिलक्ष्य करके लिखे गये होंगे। उनमें से कुछ चयनित आलेखों को इस संग्रह में एक साथ प्रस्तुत किया गया है। 'जीना इसी का नाम है' आलेख संग्रह में वही चीजें समाहित हैं, जिन्हें एक पिता अपने पुत्र में देखना चाहता है, एक राष्ट्र अपने नागरिकों में देखना चाहता है तथा एक समाज अपने आस–पास पाना चाहता है। किन्तु विडम्बना यह हो गयी है कि वे हमारे आस–पास से कहीं विलुप्त से होते जा रहे हैं। जी हाँ, वे वही मानवीय दृष्टिकोण एवं चारित्रिक विशेषताएँ हैं, जिन्हें हम हर जगह पाना चाहते हैं। किन्तु निराशा ही हाथ लगती है। इस संग्रह का वर्तमान में प्रकाशित होना कुछ–कुछ वैसा ही है, जैसे अंधेरे में भटक रहे व्यक्ति के हाथ कोई टॉर्च लग गया हो। हाँ, मैं सही कह रहा हूँ। इस संग्रह में बहुत कुछ ऐसा ही है, जिसकी आवश्यकता समाज को है, विशेषकर युवाओं को।

यदि रोजगारपरक साहित्य को शरीर का आंतरिक ढाँचा कहें, तो नैतिक साहित्य उसका सुंदर आवरण कहा जाएगा। शरीर के आंतरिक अंगों के ऊपर यदि मांसपेशियों एवं त्वचा का आवरण न हो तो वह बहुत ही वीभत्स होगा। ये मांसपेशियाँ एवं त्वचा ही हमें सुंदर आकृति प्रदान करती है। नैतिक आचरण ही हमें सौंदर्य प्रदान करते हैं और यही नैतिक सौंदर्य इस आलेख संग्रह में मौजूद है।

संग्रह के प्रथम आलेख 'पहले स्वयं का निर्माण' में राजन जी लिखते हैं कि जबतक हम अपने अंदर प्रेम, दया, करुणा का भाव विकसित नहीं करते, तबतक हम ज्ञानी होते हुए भी इंसान नहीं हैं। वर्तमान युग एक प्रकार से नैतिक दुर्भिक्ष का युग है। वास्तविकता भी यही है। जिसे सब महसूस करते हैं। संप्रति भौतिकता की अंधी दौर में व्यक्ति ने अपना बहुत कुछ खो दिया है। उसकी सोच दिनोंदिन सिमटती जा रही है। इसी का नतीजा है उसके लिए रिश्ते भी 'डिस्पोजल' की तरह हो गये हैं, 'यूज एंड थ्रो' की तरह। अगर ऐसा न होता, तो चार–चार, पाँच–पाँच बच्चों के माता–पिता वृद्धाश्रम में रहने को विवश न होते। लेखक का यह निर्विवाद रूप से मानना है कि भारत का अतीत चारित्रिक रूप से जाग्रत, उन्नत एवं अनुकरणीय था। जिसको सीखने हेतु दुनिया भर के बुद्धिजीवी हमारे देश में समय–समय पर आते रहते थे। इसी कारण यह विश्वगुरु का दर्जा भी हासिल कर पाया था। आज स्थितियाँ इसके उलट हैं। पाश्चात्य की नकल करके हम सम्मान नहीं प्राप्त कर सकते। यह बात वैसे तो लेखक ने नारियों के संदर्भ में कही है, किन्तु लागू सब पर होता है। आज नारी ने पद की ऊँचाइयाँ जरूर हासिल की, किन्तु वह सम्मान नहीं, जो कभी वैदिक युग की नारी को प्राप्त हुआ करता था। नारियों को भी समझना चाहिए कि उनका वास्तविक सौंदर्य शरीर नहीं उनका शील है। युवाओं की स्थिति भी अच्छी नहीं, उच्च शिक्षा प्राप्ति के उपरांत भी उनका आचरण हिंसात्मक एवं क्रूर होता जा रहा है। उसके पास शांति एवं जीवन का आनंद नहीं है।

राजन जी 'आजादी के मायने' शीर्षक अपने सारगर्भित लेख में लिखते हैं कि जिसका चरित्र दुर्बल हुआ, उसका पतन हुआ। चाहे वह व्यक्ति रहा हो अथवा राज्य। हमारी गुलामी हमारे शासकों के दुर्बल चरित्र की ही परिणति थी, इतिहास इसका साक्षी है। राष्ट्रप्रेम को दिलों में सहेजने की आवश्यकता प्रत्येक देशवासी के लिए जरूरी हो जाती है। हमारा अतीत सुनहला रहा है। त्याग भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है, जो इसको विश्व की महान संस्कृति बनाती है। पुस्तकें तथा मातृभाषा दोनों ही हमारी इस संस्कृति की संवाहिका रही हैं। आज पुस्तक संस्कृति लुप्त हो रही है। यह भी एक घातक कदम है। राजन जी कहते हैं, हमें पुस्तक क्रय पर भी कुछ धन व्यय करना चाहिए। पुस्तक से ही भावी पीढ़ी नैतिक मूल्य ग्रहण करती है। कुछ हानियाँ तुरंत नहीं दिखती, लेकिन हानि होती है। नैतिक साहित्य का घर पर अभाव भी उसी तरह की एक हानि है। वह हानि हमें युवा पीढ़ी की आचरणहीनता के रूप में दृष्टिगत हो रही है।

निश्चित रूप से 'जीना इसी का नाम है' पुस्तक हर वर्ग, विशेषकर युवाओं के लिए पठनीय है। सभी आलेख हमारे सामने दर्पण की तरह प्रस्तुत हैं और दर्पण कभी झूठ नहीं बोलते। दर्पण देखकर ही हम अपना मुख साफ करते हैं। यही काम इस संग्रह के आलेख कर रहे हैं। आलेख संग्रह में कहीं कहीं दो चार जगह टाइप की अशुद्धियाँ रह गयी हैं। अगले प्रकाशन में इनका ध्यान रखना होगा।

'अयन प्रकाशन' ने इसको हार्ड बाइंडिंग उच्चस्तरीय कागज, साफ–सुथरी छपाई व प्रत्येक आलेख के साथ सुंदर भावनात्मक चित्र के साथ प्रकाशित कर स्तुत्य कार्य किया है।

भाई राजकुमार जैन राजन को एक अच्छा संग्रह के लिए ढेर सारी बधाई एवं मंगलकामनाएँ!

चित्रा प्रकाशन, आकोला (राजस्थान), 9828219919

रचनाकारों से अनुरोध

सभी सम्माननीय रचनाकारों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मिडिया के किसी मंच जैसे फेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें प्रकाशन हेतु नहीं भेजें।

इस प्रकार की रचनाओं को प्रकाशित नहीं किया जाएगा।

सादर संपादक मंडल

समीक्षा

शिक्षा और संस्कृति

विभुरंजन जायसवाल
(पूर्व संपादक 'सन्मार्ग', भागलपुर)
पटना, 9852083288

शिक्षा वह कला है, जो हमारे जीवन की सांस्कृतिक, राजनैतिक, समाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग अलकृत व रोचक बना सकती है। इनकी संपूर्णता भी जीवन की संपूर्णता है। हमारे प्राचीन आश्रम, गुरुकुल या विद्यपीठ इसी संपूर्णता की प्राप्ति के लिए अपनी साधना में तत्पर रहते हैं। आचार्य केवल शिक्षा ही नहीं देते, शिष्य को संयमी, साहसी और गौरवशाली भी बनाते हैं। पश्चिमी शिक्षा ने भौतिकवादी की नींव डाली, तड़क–भड़क से नैतिक उच्चता को व्यावहारिक तथा निरर्थक बना डाली। अतएव यह निर्विवाद है कि शिक्षा का प्रभाव हमारी संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

संस्कृति अक्षुण्ण होती है, यह युगान्तकारी इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों का सार होती है। किसी समाज में गहाराई तक व्याप्त गुणों का समग्र नाम संस्कृति है। यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारो ओर प्राकृतिक परिस्थिति को निरतर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन–पद्धति, रीति–रिवाज, रहन–सहन, आचार–विचार, नवीन अनुसंधान और आविष्कार, जिससे मनुष्य संस्कारित, सुसंस्कृत होता है, वह हमारी संस्कृति का अंग है। सौंदर्य की खोज करते हुए संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को हमारी संस्कृति और शिक्षा उन्नत करती है। सुखपूर्वक निवास के लिए सामाजिक और राजनैतिक संघटनाओं का निर्माण करता है। यह जीवन की विधि। है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है, जिसके आधार पर हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आंतरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। संस्कृति किसी समाज के सूक्ष्म संसार है, जिसके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृतियों और ज्ञान को दिशा देते हैं। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनंद प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जाती है।

भारत का गौरव उसकी संस्कृति और सभ्यता है, जिसका मूल आधार संस्कृत है। यह भाषा वैज्ञानिक भाषा है। इसमें सभी प्रकार के ज्ञान का भंडार है। सामाजिक कार्यों से भी संस्कृत का इतना घनिष्ठ संबंध रहा है कि कोई भी महत्वपूर्ण कदम हम बिना उसकी सहायता से नहीं उठा सकते। संस्कृत जीवन के हर क्षेत्र में अनिर्वचनीय कार्य के साथ शील–निधि प्रदान की है, जो नैतिक शिक्षा से इस प्रकार जुड़ी है कि आज भी जगत् भर के लोगों को आश्चर्यचकित कर रही है। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों को सुधारकर ही संतुष्ट नहीं होता। उसकी जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन होते हैं। सौंदर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को उन्नत करता है।

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानं तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।

नीतिशतकम्,कवि भर्तृहरि

हमारी संस्कृति में रीति–रिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों का बोध हमें संस्कृत से हुआ, जो संस्कृति का मूल केन्द्रविन्दु है। वैदिक शिक्षा की सबसे महान शक्ति, जिसने सभी परवर्ती भारतीय दर्शनों, धर्मों और योग–पद्धतियों का मूलस्रोत बना दिया, इस बात में थी कि उसे किस प्रकार मनुष्य के आंतरिक जीवन पर प्रयुक्त किया जा सके। क्योंकि 'संस्कृति' अब भूषणरूपी सम्यक् चेष्टाओं का नाम है, जिनके द्वारा मानव समूह अपने आंतरिक और बाह्य जीवन को अपनी शारीरिक, मानसिक शक्तियों का संस्कारवान, विकसित और दृढ़ बनाता है। अथर्ववेद के कांड 3, सूक्त 30, मंत्र 1–4 में द्रष्टव्य है–

सहृदयं अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान्।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
समयञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत् भद्रया।।
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।।

महर्षि कहते हैं–'हे मनुष्यो! यह हमारा संस्कार है, हमारी संस्कृति है। तुम सहृदय बनो, पवित्र मनवाले बनो और प्राणिमात्र से द्वेष–रहित होकर रहो। पवित्र मनवाला और श्रद्धावान बनो, आपस में भद्रवचन बोलें।'

भारतीय संस्कृति व्यक्ति–समाज–राष्ट्र के जीवन का सिंचन कर उसे पल्लवित, पुष्पित, फलयुक्त बनानेवाली अमृत स्रोतस्विनी चिरप्रवाहिता सरिता है। हममें वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना हो।

भारत का इतिहास और संस्कृति गतिशील है तथा यह मानव सभ्यता की शुरुआत तक जाती है। यह सिंधघाटी की रहस्यमयी संस्कृति से शुरू होती है और भारत के दक्षिण इलाकों में किसान समुदाय तक जाती है।

संस्कृति और शिक्षा के अंतःसंबंध में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अगर बच्चे को उसकी मातृभाषा में पढ़ाया जाय तो वह उसकी रुचि के अनुसार अधिक पारंगत होगा। भाषा केवल संप्रेषण के साधन तक ही सीमित नहीं रह जाती, वह एकात्मता और राष्ट्रीय भावना तक बन सकती है। यही कारण है कि आज वैश्विक शिक्षा व्यवस्था परंपरागत रूप में नहीं रही, उसका पूर्णतः आधुनिकीकरण हो गया। पठन–पाठन को सुचारू एवं सरल करने हेतु संस्कृति के ज्ञान की खजाना संस्कृति–सभ्यता से भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है, जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है; किन्तु इसके बावजूद मन और आत्मा को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। भारत की संस्कृति आरभ से ही सामासिक रही है। उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम देश में जहाँ भी लोग बसे हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामासिक संस्कृति की विशेषता है। हिन्दू हो या मुसलमान देखने में दो लगते हैं, किन्तु इनके बीच जो सांस्कृतिक एकता विद्यमान है, वह भिन्नता को कम करती है, यही हिन्दी भाषा–संस्कृति की देन है। इस दिशा में साहित्य के भीतर कितने ही छोटे–बड़े प्रयत्न हो चुके हैं। जिस राष्ट्रवादी इतिहास–दर्शन का प्रवर्तन रमेशचन्द्र दत्त, आर.सी. मजूमदार तथा यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकारों ने इतिहास के क्षेत्र में किया है, उसी इतिहास–दर्शन का विनयोग दिनकर ने संस्कृति के क्षेत्र में किया है। वे मूल्य हैं उपनिवेशवाद विरोधी दृष्टि, धर्म निपरेक्षता और सामाजिक संस्कृति की अवधारणा। ये भारतीय संस्कृति के राष्ट्रवादी इतिहासकार हैं। इस ग्रंथ में प्राक् वैदिक से लेकर लगभग बीसवीं सदी के मध्य तक भारत की संस्कृति के स्वरूप और विकास का विवेचन किया गया है।

भारत में संस्कृति के सबसे प्रबल उपकरण आर्यों और आर्यों से पहले भारतवासियों खासकर द्रविड़ों के मिलन से उत्पन्न हुए। इस मिलन–मिश्रण या समन्वय से एक बहुत बड़ी संस्कृति उत्पन्न हुई, जिसका प्रतिनिधित्व हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत करती है। क्रमशः विचारों और सिद्धांतों में हमने अधिक से अधिक उदार और सहिष्णु होने का दावा किया। दूसरी ओर हमारे सामाजिक आचार अत्यन्त संकीर्ण होते गये। आज अपनी दृष्टि की संकीर्णता, आदतों और रिवाजों की कमजोरियों को यह कहकर नजरअंदाज करने लगे कि हमारे पूर्वज बड़े लोग थे और उनके बड़े–बड़े विचार हमें विरासत में मिले हैं। आज तो हम आणविक युग के दरवाजे पर खड़े हैं। आज हमारे विचार और उद्गार इतने ऊँचे हैं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। बातें हम शांति और अहिंसा की करते हैं, मगर काम कुछ और दीखते हैं। आज हमारे समाज की बहुत–सी रीतियाँ और हमारे धर्म की बहुत–से अनुष्ठान ऐसे हैं, जिनका उल्लेख वेदों में नहीं मिलता, उनके बारे में विद्वानों का मत है कि या तो वे आर्येतर सभ्यता की देन है या उनका विकास आर्यों के आने के बाद आर्य और आर्येतर–दोनों संस्कृतियों के मेल से हुआ है।

समीक्षा

राष्ट्रपुरुष लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और 'गीता–रहस्य'

डॉ. विद्याकेशव चिटको
से.नि. हिन्दी विभागाध्यक्ष
शोध निदेशक, निदेशक अनुसंधान केन्द्र
पुणे विद्यापीठ, 9527313387

1 अगस्त, 2019 से 1 अगस्त, 2020 अध्यात्मनिष्ठ राष्ट्रपुरुषोत्त्म लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का 'स्मृतिशती वर्ष' पूरे भारत में स्मृति शती का आयोजन किये जाने की योजना बनी है। अमेरिका के वाशिंगटन डी.सी. बृहत महाराष्ट्र मंडल द्वारा स्मृतिशती उपलक्ष्य में एक भव्य आयोजन किये जाने का समाचार मुझे मिला। सन् 1956 में इस राष्ट्र पुरुषोत्तम की जन्म शताब्दी मनायी गयी। सन् 2006 में 150वीं जयन्ती सम्पन्न हुई और अब 2019–20 में पुण्य शती स्मृति वर्ष में हम सभी उनका स्मरण कर रहे हैं। उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन कर रहे हैं। कारण भगवद्गीता में बताये गये पुरुषोत्तम योगवत लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक हैं। उन्होंने कहा था–''मैंने जिस शती में जन्म लिया है, उस शती को भूषण ऐसे ग्रंथ की रचना करूँगा।'' प्रखर बुद्धिमत्ता प्रचंड आत्मविश्वास तीव्र स्मरण शक्ति और दुर्दम्य जीजिविषा। कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा 2 नवम्बर, 1910 को ब्रह्म देश के मांडाले जेल में उन्होंने गीता रहस्य के लेखन की शुरुआत की और साढ़े तीन महीने में संपूर्ण गीता रहस्य पंद्रह अध्याय पेंसिल से लिखे। 2 मार्च को लिखे गये पत्र में उन्होंने लिखा कि 'आज लेखन पूर्ण हुआ।

ब्रह्म देश की विषम आवोहवा, 45 डिग्री तक पहुँची उष्मा, मांडाले जेल की वह कोठरी स्वच्छ ताजी हवा का अभाव पसीने से तरबतर गर्मी से बेहाल, उस विषम हवा में बौद्धिक श्रम करना तो सामान्य व्यक्ति के लिए अशक्त, असंभव और अग्नि में घृतवत् मधुमेह, पर किसी की परवाह न करते हुए निरंतर ग्रंथ वाचन और लेखन में जुटे रहे, यह तिलक ही कर पाये और किसी के लिए संभव ही नहीं था। सन् 1925 में नेताजी सुभाषचन्द्रजी सिर्फ छः महीने मांडाले में सजा काटने के लिए उन्हें रखा गया था, उस जगह की परिस्थिति का व्यौरा उन्होंने अपने बंधु को पत्र लिखा था कि कैसे इस कर्मयोगी ध्यानयोगी ज्ञानयोगी ने गीता रहस्य का लेखन किया होगा, ताज्जुब होता है, शत–शत नमन!

श्रीमद्भगवद्गीता पर भारतीय भाषाओं में सहस्राधिक भाष्य निरूपण विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक निबंध लिखे हैं। प्रश्न फिर भी तिलकजी ने गीता रहस्य क्यों लिखा और वह भी मराठी में, जबकि तिलकजी तो अंग्रेजी के उद्भट विद्वान थे?आर्कटिक होम इन वेदाज' और 'आरोयन' दोनों ग्रंथ उन्होंने अंग्रेजी में लिखे। आर्कटिक होम इन वेदाज' तो गोपाल राव गोगटे को बोल–बोलकर लिखवाया था। तिलकजी उन्हें सिंहगढ़ पर ले गये थे। वहाँ के एकांत में वे सुबह से शाम तक बोलते और गोपाल राव लिखते। किताब का नक्शा उनके दिमाग में फिट था, स्पष्ट था, कथ्य में कहीं भ्रम नहीं, शब्द प्रयोग में कहीं द्विरुक्ति नहीं, विचार स्पष्ट, न कहीं भ्रम, न कहीं पुनरुक्ति। मैक्समूलर तो पढ़कर चकित थे। उनकी विद्वत्ता विषय की गहनता, भावों की गूढ़ता को देख उनसे रहा नहीं गया। गुलाम देश के इस व्यक्ति की विद्वत्ता की भूरि–भूरि प्रशंसा की। पर गीता रहस्य का लेखन तो उन्होंने मांडाले जेल में की उस कोठरी में किया, जहाँ उनका सखा सिर्फ पुस्तकें थीं और उनका एक रसोइया था।

भगवद्गीता में 'योग' शब्द का प्रयोग एकार्थी नहीं है। यह शब्द कर्मयोग के अर्थ में है। गीता पलायन करना नहीं बताता, वरन् बुद्धिमत्तापूर्वक कुशलता से गृहस्थाश्रम का निर्वाह किस प्रकार किया जाना चाहिए, इसका मार्ग बताता है। गीता में संन्यास मार्ग न बतलाकर ईश्वर पर श्रद्धा रख निष्काम बुद्धि से अखंड कर्ता होना बताया गया है। अनेक वर्ष के मनन–चिंतन का परिपाक तिलकजी के विचार दृढ़ होने लगे थे। सन् 1901 से वे जनता के सामने रखने लगे थे। नागपुर के मॉरिस कॉलेज में उन्होंने गीता रहस्य का सार संक्षेप प्रस्तुत किया था। चित्रशाला प्रेस में पुस्तक की छपाई हुई। पुस्तक का मूल्य रखा 3 रुपये। एक मित्र ने 5 रुपये मूल्य रखे जाने का आग्रह पकड़ा, तब तिलक गरज पड़े, मुझे नफा नहीं कमाना है। गीता भगवंत का गायन है। सर्व सामान्य आदमी खरीद सके, यह मैं चाहता हूँ। 'बाइबिल आठ आने में बिकती है, मित्र की बोलती बंद। सन् 1915 के जून महीने में गीता रहस्य गायकबाड बाडा के चबूतरे पर बिक्री के लिए रखी गयी। एक व्यक्ति एक प्रति, छः हजार प्रतियाँ, छः हजार व्यक्तियों तक पहुँचने के बाद ग्रंथ का पुनर्मुद्रण किया गया। उदात्त विचारों के धनी तिलकजी ने कहा–'मुझे युवा पीढ़ी को कर्मयोग सिखलाना है, यूरोपियन को नहीं।' हमारे लोग कर्मयोग भूल गये हैं। आज जो हमारी दुर्दशा हुई है, उसका मुख्य कारण कर्मयोग भूलना है। गीता में निरूपित जीवन मार्ग प्रत्येक युवक उसका आचरण करे, समृद्ध जीवन यापन करे, इसके लिए जागरुक रहे, गीता में बताये गए मार्ग पर चले, इसलिए मैंने मराठी में लिखी है, कितना श्रेष्ठ विचार।

भगवद्गीता में पुरुषोत्तम योगवत् लोकमान्य तिलकजी हैं, राष्ट्र पुरुषोत्तम है। इस नर केशरी ने 'स्वराज्य संपूर्ण स्वराज्य, परिपूर्ण स्वराज्य' के परम पवित्र तत्व के लिए यानी मानव जाति के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए भारतवर्षीय कर्मयोगशास्त्र का अपूर्व दान और वह भी गीता रहस्य के माध्यम से पूरे विश्व को प्रदान किया। उनकी देन अमूल्य है, ऐतिहासिक है। यदि परिणामों का विचार करें तो कालातीत सामर्थ्य की संजीवनीबूटी है। जिस कालखंड में स्वराज्य स्वतंत्रता स्व अधिकार स्व सत्ता शब्द को उच्चारना यानी सौ सौ कोड़े की मार सदृश उस कालखंड में बाल गंगाधर तिलक ने स्वराज्य का जय–जयकार जयघोष किया। नर केशरी दहाड़ा था। स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं उसे लेकर ही रहूँगा। कालांतर में यह मंत्र बन गया। स्थितप्रज्ञवृत्ति आचरण पाठ उन्होंने गुलाम जनता को पढ़ाया। एक नहीं, दो नहीं, तीन बार जेल की कठोर यातनाएँ उन्होंने सहीं। कथनी करनी में कुछ भेद नहीं, संत तुकाराम के शब्द 'बोले तैसा चाले त्याची बंदावे पाऊले।' गीता रहस्य उन्होंने सिर्फ लिखा नहीं, उसे जिया भी। गुलाम देश की जनता को गीता रहस्य के रूप में सैद्धांतिक अधिष्ठान प्राप्त करा दिया। इस गीता रहस्य के द्वारा उन्होंने जन समाज को चेताया। मरे मुर्दे में प्राण फूँका। केशरी में मराठी लेख लिखा–अंग्रेजों का दिमाग तो ठिकाने पर है ना–यह सवाल करने का साहस तो उनका ही था। अभय थे वे, प्रतिकूल परिस्थितियों से घबराने वाला उनका ठंढा खून नहीं था। वेद में मंत्र है–'अभय मित्राद् अभयं अमित्राद अभयं ज्ञाताद अभय पुरोक्षत।'

स्वदेशी बहिष्कार राष्ट्रीय शिक्षण और स्वराज्य के चार मजबूत स्तंभ पर उन्होंने स्वतंत्रता की दीवार खड़ी की। पूरे भारत के मानस में चेतना की वाणी चेतायी। मांडाले जेल की सजा काटकर लौटे पूणे में और पुनश्च हरि ओम कहकर स्वतंत्रता के लिए खड़े हो गये। जबान बेटे के चले जाने और सुख–दुःख में सदा काया की छायावत् साथ बनी रहती जीवनसंगिनी सत्यभामा बाई स्वर्ग सिधार गयी थी। उन बिछोह से पहाड़ जैसी छाती दरक गई थी। फिर भी वे स्वराज्य के लिए जुट गये थे। भाषा–भूषा भजन और भोजन जन समाज से जुड़ने का लोकसंग्रह का प्रभावी माध्यम है। पूरे भारतभर घूमकर उन्होंने सहज समझ में आ जाए, ऐसी सरल भाषा में व्याख्यान दिये। अपनी लेखनी को धार दी। शब्दों को तराशा, लेख लिखे। छोटे–छोटे परिपत्रक तैयार किये। गली चौमुहाने पर इकट्ठा होते पढ़–अनपढ़ नागर–ग्राम्य, धनी–निर्धन, स्त्री–पुरुष, वृद्ध–बालक, छात्र युवा को एकत्र लाने के लिए गणेश उत्सव और शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक पर्व की शुरुआत की।

बुद्धिमत्ता विघ्नहर्ता सुखकर्ता श्रीगणेश सभी प्रिय देवता की पूजा–अभ्यर्थना लोकजीवन और लोकसंस्कृति का अभिन्न हिस्सा बना दिया यानी गणेशोत्सव भारतीयों के लिए पुनर्जागरण का पर्व बन गया। आज हम इस गणेशोत्सव के विस्तार को देख रहे हैं। पूरे भारत में तो यह लोकप्रिय ही है, पर विश्व में जहाँ कहीं भारतीय बस गये हैं, वहाँ गणेशोत्सव मनाया जा रहा है। फ्रांस में तो बुद्धिदाता वरदमूर्ति की प्रतिमाएँ बड़ी कलात्मकता के साथ बनायी जा रही है।

रत्नागिरी के एक सामान्य चित्पावनी ब्राह्मण परिवार के संस्कारों में पोषित 'बलवन्त' जिसे लाड़–दुलार से भी 'बाल' बाल कहते थे–यही विश्ववंद्य बाल गंगाधर तिलक। भगवद्गीता जिसका श्वास और प्राण था। अखंड विश्वास, उनके जीवन भर एक ही मंत्र का जप किया। वह मंत्र था स्वतंत्रता। ब्रिटिश सत्ता जो अपने को जगज्जेता समझती थी, उससे चार हाथ करना उसे टक्कर देना आसान काम तो नहीं था, पर भगवान श्रीकृष्ण ने जैसा कहा है–असंभव को संभव कर दिखाने की ताकत उनमें थी। जनसामान्य को स्वतंत्रता यज्ञ में आहुति डालने के लिए तैयार किया। चातक का अखंड विश्वास एक भरोसा एक बल एक आस विश्वास प्रचंड आत्म विश्वास पुरुषोत्तम का 'हतो वा प्राप्यसे स्वर्ग जीत्वा वा भोक्ष्यसे महिम्' लक्ष्य प्राप्ति के लिए कर्म करो। ज्ञान की सार्थकता तो तभी है, जब वह कर्म में उतरे। योगस्थः कुरु कर्माणि, कर्म को योग समझो। गीता के तीसरे अध्याय को कर्मयोग कहा गया है। कर्म को यज्ञ मानकर काम करो। यही आराध्य है और आराधना। बाल गंगाधर तिलक ने सामान्य जन में विश्वास और श्रद्धापूर्वक काम करने का बल पैदा किया। ये लोकमान्य कहलाये। पुरुषोत्तम लोकमान्य के व्यक्तित्व के शत पैलू हैं। निःसंदेह उनका कार्य तो अष्टागी था ही, असंख्य लोगों के वे आदर्श हैं। मैगासे पुरस्कार से सम्मानित पांडरंग शास्त्री आठवलेजी का स्वाध्याय केन्द्र नानाजी देशमुख का चित्रकूट में खड़ी स्वावलंबी शिक्षा योजना केन्द्र, बाबा आमटे का कुष्ठ निवारण केन्द्र, जिस केन्द्र के लिए उनका पूरा परिवार पत्नी, पुत्र स्नूषा और पौत्र कर्मशील बने हुए हैं। डॉ0 अभय बंग और डॉ. राणी बंग कलबुर्गीजी को और गौरी लंकेश को तो अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। लढवैया वृत्ति और स्पष्टवादिता के लिए उनका आदर्श लोकमान्य तिलक थे। चन्द्रयान 2 के निर्माण में हमारे भारतीय वैज्ञानिकों की प्रतिभा बुद्धि, कार्यप्रवणता सिर्फ प्रणम्य ही नहीं, तो अनुकरणीय भी है। कर्मनिष्ठा का आदर्श हैं। चन्द्रयान 2 के शिल्पकार ये वैज्ञानिक प्रतिदिन सोलह से अट्ठारह घंटे लक्ष्य सिद्धि के लिए काम कर रहे थे। चन्द्रयान 2 के बाह्य आवरण एल एंड टी कंपनी के पाँच अभियन्ताओं की टीम जिनमें मनीष भामरे विनायक सलीन कमलेश पोतदार महेश चव्हाण के आदर्श लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक हैं। हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने इन अभियंताओं की कर्मनिष्ठ कर्मरत हो लक्ष्य प्राप्ति पर इन्हें बधाई दी है। योग कर्मसु कौशलम् का पाठ तो तिलक ने पढ़ाया है। अध्यात्म और समाज हित दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। स्थितप्रा कर्मयोगी कर्मनिष्ठ जनता हृदय निवासी विश्ववंद्य लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकजी की स्मृति शती वर्ष में उनके कर्तृत्व का स्मरण कर हम उन्हें शत–शत नमन करते हैं।

मुकरियाँ

त्रिलोक सिंह ठकुरेला
आबू रोड राजस्थान
मो0 9460714267

जब देखूँ तब मन हरसाये
मन को भावों से भर जाये
चूमूँ कभी लगाऊँ छाती
क्या सखि साजन?ना सखि, पाती

उससे सटकर मैं सुख पाती
नई ताज़गी मन में आती
कभी न मिलती उससे झिड़की
क्या सखि साजन?ना सखि, खिड़की

रातों में सुख से भर देता
दिन में नहीं कभी सुधि लेता
फिर भी मुझे बहुत ही प्यारा
क्या सखि साजन?ना सखि, तारा

सबके सन्मुख मान बढ़ाये
गले लिपटकर सुख पहुँचाये
मुझ पर जैसे जादू डाला
क्या सखि साजन?ना सखि, माला

जब आये तब खुशियाँ लाता
मुझको अपने पास बुलाता
लगती मधुर मिलन की बेला
क्या सखि साजन?ना सखि, मेला

पाकर उसे फिरूँ इतराती
जो मन चाहे सो मैं पाती
सहज नशा होता अलबत्ता
क्या सखि साजन?ना सखि, सत्ता

मैं झूमूँ तो वह भी झूमे
जब चाहे गालों को चूमे
खुश होकर नाचूँ दे ठुमका
क्या सखि साजन?ना सखि, झुमका

जब आये रस रंग बरसाये
बार बार मन को हरसाये
चलती रहती हँसी–ठिठोली
क्या सखि साजन?ना सखि, होली

बार–बार वह पास बुलाता
मेरे मन को खूब रिझाता
खुद को उसपर करती अर्पण
क्या सखि साजन?ना सखि, दर्पण

मेरी गति पर खुश हो घूमे
झूमे, जब–जब लहँगा झूमे
मन को भाये, हाय अनाड़ी
क्या सखि साजन?ना सखि, साड़ी।

प्रो. शरद नारायण खरे
जे.एम.सी. महिला महाविद्यालय, मंडला
मो. 9425484380

मैत्री के दोहे

मित्र वही जो नेह दे सदा निभाये साथ
हर मुश्किल में थाम ले, कभी न छोड़े हाथ

पथ दिखलाये सत्य का, आने ना दे आंच
रहता खुली किताब सा, लो कितना भी बांच

मित्र है सूरज चांद सा बिखराता आलोक
हर पल रह साथ जो जगमग करता लोक

कभी न करने दे गलत, राहें ले जो रोक
वही मित्र मानो खरा, जो देता है टोक

बुरे काम से दूर रख, जो देता गुण धर्म
मित्र नाम ईमान का, नैतिकता का मर्म

मित्र न रखे छल कपट, ना ही कोई डाह
तत्पर करने को शरद, वाह–वाह बस वाह

खुशबू का झोंका बने, मीठी झिरिया नीर
मित्र रहे यदि संग तो, हो सकती ना पीर

मित्र मिले सौभाग्य से, बिखराता जो हर्ष
मिले मित्र का साथ तो, जीतोगे संघर्ष

भेदभाव को भूल जो, थामे रखता हाथ
कृष्णसुदामा सा शरद, बालसखा का साथ

मित्र नहीं तो जिंदगी, देने लगती दर्द
मित्र रोज ही झाड़ दे, भूलों की सब गर्द।

समीक्षा

हिमांचल में बरसात का रोमांच

अनंत आलोक
साहित्य लोक बायरी डा ददाहू
जिला सिरमौर
(हिमाचल प्रदेश) 9418740772

लो बादल ने खोल दी फिर गठरी की गीठ
कीचड़ कीचड़ हो गई, पगडंडी की पीठ

बरसात आते ही मुझे अपना उपुर्यक्त दोहा स्मरण हो आता है, देश के मैदानी इलाकों में भले ही बरसात का मौसम आफत लेकर आता हो, लेकिन ऊँचे पहाड़ों पर यही बरसात कुदरत की खूबसूरत नैमतें लेकर आती है। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो बरसात पहाड़ों को इस तरह सजाती सँवारती है कि सदैव पहाड़ों पर रहनेवाले लोग भी इस सौंदर्य पर फिदा हो जाते हैं। बच्चे–बूढ़े, नवयुवतियाँ सब के सब झूम उठते हैं। नाचते–गाते आनंदित होते सभी जवाँ दिल गुनगुनाते गाते नजर आते हैं, जो हृदय के आनंदित होने का प्रमाण होता है। पहाड़ी नदियों का यूँ आनंदित होकर झूठ उठना अनायास नहीं है, बरसात का मौसम ही ऐसा होता है पहाड़ों में कि इंसान के क्या पशु–पक्षी, जीव–जंतु सब के सब हँसते–गाते नजर आते हैं। नदियों में उमड़ता यौवन, पेड़–पौधों के तन पर हरिताम्बर उसपर लाल–पीले फूलों के खूबसूरत आभूषण मानो नवयुवक–नवयुवतियाँ किसी उत्सव में सज–धजकर झूम–झूमकर नाच–गा रहे हों। ऐसा नयनाभिराम दृश्य भला किसे आनंदित नहीं करेगा। एक दोहे के माध्यम से बरसात का शब्दचित्र देखें और अनुभव करें–

भीगे भीगे हुए दिन गहरी काली रात
दीप जलाकर चल पड़ी, जुगनू की बारात।

हिमाचल की बात करूँ तो यहाँ बरसात के मौसम में पग–पग पर ऐसे ही मनोहारी दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्राकृतिक आनंद उत्सव का भरपूर आनंद लेते हैं यहाँ के वाशिंदे। दरअसल बरसात के दिनों में हिमाचल क्या लगभग सभी ग्रामीण इलाकों में फसल को बीजने, निराई–गुड़ाई करने के बाद पर्याप्त फुर्सत के क्षण होते हैं। इन्हीं फुर्सत के क्षणों में जवाँ दिल में दबी प्रेम की चिंगारी को मिल जाती है थोड़ी मौसम की हवा। बस फिर क्या सभी जवान दिल बाग–बाग हो उठते हैं। ऐसे जवाँ दिलों के मचलने, बहलने और बहकने के लिए पर्याप्त स्पेस मिल जाता है फसलों के रखवाली के समय। मकई की आदमकद झूमती फसल के छोरों पर बने होड़ों (फसल की रखवाली के लिए बनाये गये स्थायी शेड) में बतियाते खिलखिलाते, मस्ती करते कई–कई दिल फसलों संग झूम उठते हैं। रोमांच के इन तरंगित कर देनेवाले पलों को केवल अनुभव किया जा सकता है, आँखों से देखा नहीं जा सकता। क्योंकि आहट पाते ही वे भाग खड़े होते हैं अपनी–अपनी ड्यूटी पर। आप कुदरती रंग में रँगे इन दुर्लभ पलों को उसमें स्वयं शामिल होकर ही देख सकते हैं। घास–फूस की छतवाले लकड़ी के बने बंकरनुमा इन होड़ों में धरती से पर्याप्त ऊँचाई पर होते हैं अस्थायी शयन आसन जिनमें थकान होने पर कमर सीधी की जा सके या फिर रात के समय जानवरों का डर हो तो सुरक्षित खुली आँख रखकर सोया या लेटा जा सके।

हूँ...हा...ले...ले की ध्वनि से जानवरों को डराने–भगाने के साथ–साथ अन्य रखवालों को भी सूचित, आकर्षित कर लिया जाता है कि आज हम हैं यहाँ क्योंकि हर रोज एक ही की ड्यूटी रखवाली के लिए लगे ऐसा तभी होता है, यदि घर पर एक या दो ही सदस्य हों अन्यथा ड्यूटी बदलती रहती है।

ऐसा सिगनल फिर दूसरे छोर से भी मिलता है। इसी तरह रखवाला/रखवाली किसी मुसीबत या खतरनाक जानवर के हमले से बचने के लिए भी संगठन तैयार कर लेते हैं और दादुर, झींगुर, नालों और होड़ों के नीचे बँधे कुत्तों के सामूहिक शोरगुल के बीच हँसी–ठिठोली, छेड़छाड़ और प्यार की बातें खुले आसमान के नीचे बेरोकटोक और बेखोफ होती रहती हैं, लेकिन जिंदगी के इस आनंद के लिए कुछ खोना न पड़ता हो, ऐसा नहीं है। इस सबके लिए खोनी पड़ती है दिन की चैन और रातों की प्यारी–प्यारी नींद। अन्यथा रखवालों की मश्गुलियत का फायदा उठा जंगली जानवर फसलें उजाड़ देंगे और अगले दिन से फिर रखवाली की छुट्टी।

प्रेम, रोमांस में जोर–जबर्दस्ती, छीना–झपटी वर्जित है और इसीलिए शायद इसमें इतना मजा भी है वो गीत है न! 'ये माना मेरी जाँ मुहब्बत सजा है/ मजा इसमें इतना मगर किस लिए है।' शहरों में भले ही आज वासनाओं के दरिंदे दरिंदगी पर उतर आते हों, लेकिन ग्रामीण इलाकों, खासकर पहाड़ों में आज भी प्रेम को प्रेम की तरह ही किया जाता है।

चरागाहें और रोमांस :

बरसात के ही दिनों का एक और मनोहारी दृश्य होता है चरागाहों में पशु चराते निश्छल, निष्कपट और खूबसूरत चरवाहे। चरागाहों में मुहब्बत परवान चढ़ने से किस्से भगवान कृष्ण के समय से चले आ रहे हैं। बाँसुरी बजाते भगवान कृष्ण और पास में चरती गौवें, गोपियों का कृष्ण के बाँसुरी पर मुग्ध हो आकर्षित होना और फिर कृष्ण से छेड़छाड़ करना, भले ही वह प्रेम निश्छल और निस्वार्थ था। लेकिन था तो प्रेम ही और जब प्रेम से भगवान नहीं बच पाए तो भला इंसान की क्या औकात! पहाड़ी प्रदेशों के ग्रामीण आंचल में पढ़ाई–लिखाई पूरी करने के बाद नौकरी लगने से पहले और शादी–विवाह के बीच के अंतराल में युवक–युवतियों के पास एक मस्त स्पेश होता है, जिसका सदुपयोग वे करते हैं, घर के कार्य में हाथ बँटाना और घर में सबसे जरूरी और कठिन कार्य होता है पशुओं की देखभाल। इस कार्य को कोई बड़ा, बूढ़ा मजबूरी में ही करता है। इस कार्य को खुशी–खुशी करते हैं ये युवक–युवतियाँ। ये सुबह का नाश्ता बगैरह करने के बाद अपने–अपने पशु–गौवें, बकरियाँ लेकर निकल जाते हैं घर से दूर सामूहिक या शामलात (सरकारी) चरागाहों में जहाँ पशु हरी–भरी घास, दूब चरते हैं और युवक–युवतियाँ अपने मित्रों के संग खेलते, बतियाते, हँसते गाते मस्ती करते हैं। ये हँसना–खेलना, गुनगुनाना कब गीतों में बदल जाता है, पता ही नहीं चलता और गीत/गाना वही गाता है...गीत भी है न! 'हरदम जो प्यार करेगा वो गाना गायेगा....और बरसात का मौसम आते हैं इन जवाँ दिलों की धड़कनें पहले से तेज हो जाती हैं। तन–मन में खिल उठती है प्रेम की भीनी–भीनी सुगंधवाली प्रेम मंजरियाँ, जिनकी खुशबू हवा के साथ चारों ओर फैल जाती है। लड़का–लड़की पहले से परिचित हों, तो प्रेम की पींग चढ़ाने में अधिक देर नहीं लगती, लेकिन अपरिचित हों तो यहाँ प्रेम प्रसंग आज भी कृष्ण के समय के ही होते हैं। युवक बाँसुरी पर मधुर–मधुर, मनमोहक तान छेड़ता है और जो लड़की के हृदय को तरंगित कर देती है। घर से दूर प्रकृति की हरी–भरी गोद में नदी, नालों के शोर के बीच से उठती बाँसुरी की स्वर लहरियाँ पर्वतों से टकराकर गूँजती हैं, तो एक–दो नहीं कई–कई गोपियाँ कान्हा की दीवानी हो जाती हैं। मधुर धुन का पीछा करती हुई हिम्मतवाली लड़कियाँ धुन का जवाब अपनी मधुर आवाज में किसी लोकगीत या फिर प्रेमगीत 'गंगी' से देती हैं। हाँ, दूरियाँ मिटाने में या यूँ कहें एकाकार होने में शहरों के अपेक्षा बहुत अधिक समय लगता है। कृष्ण गोपियों की ये लीला महीनों क्या, कई बार तो सालों चलती है और कई बार इतनी देर हो जाती है कि हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। दोनों में से किसी एक या फिर दोनों का ही विवाह माँ–बाप की मर्जी पर हो जाता है, लेकिन मुहब्बत को भला कौन मार पाया है। वह तो शाश्वत है और रहेगी। ऐसे प्रसंगों में फिर सालभर से प्रतीक्षा रहती है बरसात/चौमासे की, पहाड़ों में आज भी पहली बरसात यानी चौमासे में सास–बहुएँ एक स्थान पर नहीं रहती हैं। दूरे

देश में भी सावन को इसीलिए काला महीना कहा जाता है। ये काला होता है उन नवविवाहितों के लिए जो अपनी मर्जी से विवाह करते हैं या जिनका कोई प्रेम प्रसंग न हो या हो भी तो वे उसे भूलकर अपने नये जीवन की शुरुआत कर चुके हों। लेकिन यह काला महीना उन प्रेमियों के लिए सुनहरा महीना हो जाता है, जो एक दूजे को देखने–सुनने, बतियाने के लिए सालभर से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। प्रसंग कितने भी गहरे हों, लेकिन समय ऐसा मरहम है कि बड़े–बड़े जख्मों को भर देता है, लेकिन थोड़े दिन तो जख्म हरे रहते हैं। फिर धीरे–धीरे घर गृहस्थी के चक्कर में सब भूलभाल जाते हैं। कहते भी हैं कि आँखों से ओझल, दिमाग से ओझल। भूलना ही चाहिए जो हो न सका उसे भुलाना ही सबके लिए अच्छा है। भूलने का भी बड़ा महत्व है, अन्यथा इंसान पागल न हो जाए, सब अस्त–व्यस्त न हो जाए। आज के समय में ये जो आभासी दुनिया का संपर्क है और जो बराबर बने रहते हैं, यही शादी–विवाह के टूटने के सबसे अधिक जिम्मेवार होते हैं।

लोकगीतों में प्रेम :

पहाड़ी जीवन में लोकगीतों का विशेष महत्व तो है या यूँ कहें कि लोक में लोकगीतों का बहुत अधिक महत्व है वो फिर पहाड़ी लोक हो या फिर देशी। हिमाचल की बात करें तो मेलों, उत्सवों, विवाह–शादियों और त्योहारों के अवसर पर नाटी, मुजरा, रासा, गंगी, साके और पुड़वा आदि अनेक लोकगीत गाने का प्रचलन है। लेकिन गंगी एक ऐसा लोकगीत है, जिसे प्रेमगीत ही कहा जा सकता है। गंगी यानी माहिया जो न केवल लोक में रचा बसा है, बल्कि हिंदी साहित्य में भी पद्य विधा के अंतर्गत स्वतंत्र उपविधा के रूप में स्थापित है। माहिया पंजाब में भी बहुत लोकप्रिय है। इसमें नायक–नायिका गीतों के माध्यम से एक दूसरे से सवाल–जवाब करते हैं। पहाड़ों में गंगी यानी माहिया को यूँ तो विवाह आदि में भी मनोरंजन के लिए गाया जाता है, लेकिन बरसात के मौसम में रिमझिम फुहारों के बीच जंगल में या घसनियों के घास काटते हुए जब गंगी की स्वर लहरियाँ पंचम स्वर में गूँजती हैं तो चलते मुसाफिरों के पाँव थम जाते हैं। पहाड़ी के एक ढलान पर घास काटता या पशु चराता नायक दूसरी पहाड़ी पर या फिर छोर पर कार्य करती नायिका को सुनाते हुए यूँ गाता है–'तेरी बकरी रु नाव दुर्मा/ पारो दी तू आंडडी आजा। तेरी आखटी दा पाऊँ सुरमा।' और फिर दूसरे छोर से नायिका जवाब देती है–'बोडे बाबे रे बे लाडल धियो/ कालजा बे बोडा इ चेई। दावा होशो री तो दाणिख पियो।' इस प्रकार ये सिलसिला कई–कई दिनों तक चलता रहता है, जिसमें भले ही विशुद्ध प्रेम न हों, लेकिन रोमांस तो है न! चुहल तो है न! छेड़खानी तो है न! आज के भागदौड़ वाले समय में किसी के पास समय कहाँ है इन बातों के लिए, लेकिन ग्रामीण इलाकों में आज भी ये रोमांस, चुहल, छेड़छाड़ है, हाँ है नहीं तो जोर–जबर्दस्ती, हवस, दरिंदगी। आज अंतरजाल की दुनिया में खोये युवा–युवतियाँ जितनी जल्दी एक दूसरी की ओर आकर्षित होते हैं, उतनी ही जल्दी विकर्षित भी हो रहे हैं। स्वाभाविक भी है आभासी दुनिया में आदमी केवल और केवल एक मशीन है और मशीन में संवेदनाएँ नहीं होतीं। संवेदनाएँ तो केवल अब गाँव के इन प्रसंगों में ही बची हैं खासकर पहाड़ी क्षेत्रों में जबतक बची हैं, तबतक ही वहाँ इंसान है।

कविताएँ

धर्मेन्द्र कुसुम
आदमपुर, भागलपुर
मो. 9934891141

भविष्य

इक्कीसवीं सदी में
पैदा हुए हैं ये
न पलते हैं
न दुलराये जाते हैं
संस्कारित भी नहीं होते
सिर्फ जीते और सीखते हैं

सीखा है इन्होंने कि
फालतू है भावनात्मक रिश्ते
और बेकार है नैसर्गिकता
इन्हें तैयार होना है
वर्तमान की स्पर्धा
और भविष्य की
वैश्विकता के हिसाब से

इन्हें पता है
नेट की भाषा
जानते हैं
रिमोट और मोबाईल का इस्तेमाल
लेकिन नहीं जानते
फूलों के नाम
पक्षियों की भाषा
पेड़ों की प्रजातियाँ
तितलियों के रंग
चाँद तारों की बातें
परियों की कहानियाँ

ये आज के बच्चे हैं
कल के भविष्य

2. मँहगाई

यह बहुत अच्छी बात है कि
रात को निकलता नहीं सूरज
इससे भी ज्यादा सुकूनदायक है कि
रात की नहीं होती
सुबह, दोपहर और शाम
इसलिए दिन की तरह
तीन–तीन बार
लगती भी नहीं है भूख
होती नहीं भोजन की दरकार

सुरसा–सी बढ़ती मँहगाई
और बेरोजगारी के आलम में
छंगुरी राम की यही इच्छा
चीजें सस्ती न हो सके तो न हों
लेकिन रात को निकले न कभी सूरज
और न होने लगे
रात की भी अपनी
सुबह, दोपहर और शाम।

3. गुणवत्ता

तन्हा रातों में
जो जागते हैं देर तक

जिनकी उँघती आँखें
पढ़ती रहती हैं एसएमएस
बातें करते हैं घंटों
महबूब से
वही बता सकते हैं कि
किस कंपनी की
कौन से मॉडल के मोबाईल की
बैटरी चलती है देर तक

4. शब्द

शब्द
जो बुने मैंने
लेकिन कहा नहीं तुमसे
फिर भी सुना तुमने
ठीक–ठीक वही शब्द
जो बुना मैंने।

शब्दों की यही है ताकत
कि बिना कहे भी
ठीक वही सुन लेते हैं वे
जिनके लिए बुने जाते हैं शब्द।

शोध आलेख

स्त्री–पुरुष के बीच प्रेम और देह

सुभाषचन्द्र झा
बिहार प्रशासनिक सेवा
राज्य सरकार के पूर्व विशेष सचिव
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर
मो0–9431208 42

प्यार कहने को ढाई अक्षरभर है, पर कितना कुछ समेटे है अपने अंदर! आशय कितना विराट और बहुआयामी। भाँति–भाँति के रंग लिये हुए। निःशब्द, लेकिन अनुगूँज ठेठ अंदर तक। एक अमूर्त अहसास। अपनी संपूर्ण उदात्तता में प्रेम कोमल भावनाओं की मौन अभिव्यक्ति। प्रेम कुछ देखा, कुछ अनदेखा, कुछ व्यक्त, कुछ अव्यक्त और कुछ दृश्य, कुछ अदृश्य–सा। किसी एक परिभाषा में बाँधना, प्रेम को छोटा करना है। प्यार का इजहार आँखों से होता है, जबान से नहीं। प्रेम है अनंत, असीम। शुद्ध हृदय और हृदय पर किसी का वश नहीं। कब किसपर आ जाएगा, कहना कठिन।

प्रेम : स्त्री इस मामले में अधिक भावुक और संवेदनशील है। वह कब, कैसे, किसको माथे का सिन्दूर बना लेगी, कब प्रेमी की खातिर पति की हत्या तक करवा देगी और कब पति की चिता के संग सती हो जाएगी, कहना मुश्किल। प्यार पाने के लिए कोई स्त्री किसी भी हद तक जा सकती है, कुछ भी कर सकती है, किसी भी वर्जित लक्ष्मण–रेखा को लाँघ सकती है। सब कुछ छोड़ सकती है। एक बार उसके मन में प्रेम का अंकुर फूट जाए, तो उसे मन से बुहारना कठिन है। परेड पर नारी अस्मिता की बड़ी–बड़ी बातें करनेवाली खूबसूरत अभिनेत्रियों ने अपने उम्र से काफी बड़े, विवाहित, बाल–बच्चेदार, युवा संतानों के पिता से विवाह कर लिया, यह भूलकर कि ऐसा करके दूसरी स्त्री का घर बर्बाद कर रही है। प्रकृति ने नारी को माँ की भूमिका के लिए ही बनाया है। स्त्री का बायोलॉजिकल वैल्य उसके मातृत्व से संपृक्त है।

औरत ऐसा यथार्थ है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। पुरुष भले ही औरत के शरीर पर बंधन लगा दे, पर उसके मन के स्वच्छंद विचरण पर प्रतिबंध लगाना उसके वश की बात नहीं है। एक औरत की मोहब्बत और पुरुष की मोहब्बत में बहुत फर्क होता है। पुरुष की तुलना में स्त्री अधिक निष्ठावान, समर्पित एकनिष्ठ और सहिष्णु होती है। बहुत जुदा है महिला और पुरुष के दिल–दिमाग। मानसिक व शारीरिक स्तर पर पुरुष से बहुत अधिक सहनशील होने का कारण स्त्री के शरीर में मौजूद विशेष हॉर्मोन्स हैं। प्रिमेच्योर जन्मे बच्चों में 80 प्रतिशत लड़कियाँ बच जाती हैं, जबकि अधिकांश लड़के दम तोड़ देते हैं।

प्रेम और देह के अंतर्सम्बन्धों का सवाल बहस–तलब है। क्या देह को अलग करके प्रेम को देखा जा सकता है?क्या प्रेम देह के आकर्षण से परे है?क्या प्रेम देह के माध्यम से ही व्यक्त होता है?क्या प्रेम की सूक्ष्मता देह की सूक्ष्मता में ही जाकर समाप्त होती है?देह के साथ प्रेम हो, वह अनिवार्य नहीं पर प्रेम के साथ देह होने से इंकार नहीं किया जा सकता। हर प्रेम या रोमांस में सेक्स का स्फुरण होता ही है। प्रेम की आरंभिक अवस्था में भी स्त्री–पुरुष के बीच सेक्स के आकर्षण से कतई इंकार नहीं किया जा सकता। प्रेम के साथ शरीर का संगीत है। अरैंज्ड मैरिज में देह के साथ–साथ प्रेम परवान चढ़ता है–स्थायी भाव के रूप में–एक अव्यक्त सुखानुभूति के साथ। उसी से समर्पण बढ़ता है। राग–अनुराग में इजाफा होता है।

सच्चे प्यार की डोर बारीक किन्तु मजबूत होती है। छोटे–छोटे आघात से टूटती नहीं। प्रेम में सघनता है, तो तमाम अंतर्विरोध, संदेह समाप्त हो जाते हैं। ऐसे में शरीर की शुचिता, अनुशुचिता का प्रश्न भी गौण हो जाता है। अगर समझ व्यापक, दृष्टि उदार, प्रेम सच्चा और भरोसेमंद हो तो देह की पवित्रता– अपवित्रता का सवाल पीछे छूट जाता है। यदि सवाल ऊब, अतृप्ति, एकरसता से है, तो उसका सीधा संबंध देह से है, वासना से है। विवाहेतर संबंध में देह की तलाश है, अनिष्ठा, वासना पूर्ति के अलावे कुछ नहीं है वहाँ। प्रेम के बिना तृप्ति अधूरी है। तृप्ति और पूर्णता प्रेम के साथ ही आती है। दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण चीज है प्रेम। मगर झुककर ही मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं। प्रेम मानवीय बनाता है। अंदर तक बदल देता है। इस भयावह समय में जहाँ घृणा, स्वार्थ, ईर्ष्या के चारों ओर कोहरे छाये हुए हैं, प्रेम ही इसे चीर सकता है।

आज किसी को भी प्रेम का वास्तविक अर्थ पता नहीं है। आखिर अर्थ का पता भी कहाँ से हो। आज के समय में सब कुछ बाजार में इतनी आसानी से उपलब्ध जो है। बात चाहे सेक्स की हो या प्यार की। हर चीज ऑनलाइन उपलब्ध जो है। सारी पहचान टाइम पास तक ही सिमट गया है। झुकाव बेडरूम शेयर करते तक है, फिर दोनों अपने–अपने रास्ते निकल जाते हैं। कोई किसी से कमिटेड नहीं है। रिश्ते में होना जिंदगी में स्थिरता लाता है। प्रेम का रिश्ता रिश्तों से बढ़कर है।

स्त्री एक बार प्रेम में डूबने के बाद दोबारा प्रेम के नशीले व्यामोह–सम्मोहन से बाहर नहीं निकल पाती। स्त्री चाहे कितना ही आगे निकल जाए, फिर भी वो अपने प्यार को समर्पित होती है। स्त्री को यदि समर्पित प्यार मिले तो शायद उसे कभी शिकायत ही न हो। प्यार में हर स्त्री बस इतना ही चाहती है कि उसका प्रेमी उसकी भावनाओं को समझे और उनका सम्मान करे। स्त्री अपने आत्मसम्मान को अधिक अहमियत देती है। स्त्री उसी प्यार को तबज्जो देती है, जो प्यार उसे शादी के बाद मिलता है। प्यार में ईमानदारी–सच्चाई हर स्त्री चाहती है। पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ भी प्रेम के मामले में अपने प्रेमी से ही इस बात की उम्मीद करती हैं कि पहले उनका प्रेमी ही उनके सामने अपने प्यार का इज़हार करे।

प्यार एक खूबसूरत भावनात्मक एहसास है, जिसके जागते ही कायनात में जैसे चारों ओर हजारों फूल खिल उठते हैं और जिंदगी को जीने का नया बहाना मिल जाता है। स्त्री के जीवन में प्यार ही सब कुछ है। प्यार उसकी साँसों में फूलों की खूशबू की तरह रचा–बसा होता है, जिसे वह ताउम्र नहीं भूल पाती। प्रेम करने पर कोई भी स्त्री बहुत कमजोर, बहुत असहाय हो जाती है और जीवन को ही दाव पर लगा देती है, प्रेमी के लिए अपना जीवन सर्वस्व न्योछावर कर देने की भावना रखती है। सचमुच स्त्री ही रचती है–प्रेम की परिभाषा। स्त्री का मनोविज्ञान कुछ ऐसा होता है कि वह अपनी भावनाओं का इजहार करने के प्रति सचेत होती है। अपने प्रेम को स्त्री चाहकर भी भूल नहीं पाती।

प्रेम माँग नहीं है, प्रेम अपने आप आता है। प्रेम देने से प्रेम आता है। प्रेम न तो सेक्स है, न लालच है, न अकेलापन है, न निर्भरता है, न खुद को दूसरे का मालिक समझने की प्रवृत्ति है। प्रेम का किसी अन्य से क्या लेना–देना, यह तो अपने अस्तित्व की एक स्थिति है। प्रेम कोई संबंध नहीं है, हो सकता है यह संबंध बन जाए, पर प्रेम अपने आपमें कोई संबंध नहीं होता, प्रेम उसमें सीमित नहीं होता। वह तो उससे कहीं अधिक है। जब वह संबंध होता है, तो प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम तो साँस लेने की तरह होता है। साँसें जो शरीर के लिए करती हैं, प्रेम वही आत्मा के लिए करता है। प्रेम के माध्यम से आत्मा साँस लेती है; यही तो प्रेम है।

केवल प्रेम ही रूपांतरण कर सकता है; क्योंकि केवल प्रेम के माध्यम से ही अहंकार समाप्त होता है। बिना शर्त के प्रेम, केवल प्रेम के लिए प्रेम। प्रेम जो आकर्षण से मिलता है, वह क्षणिक होता है। आकर्षण से जल्दी ही मोह भंग हो जाता है। यह प्रेम धीरे–धीरे कम होने लगता है। ऊब आ जाती है। यह प्रेम असुरक्षा, भय, अनिश्चितता और उदासी लाता है। जो प्रेम सुख सुविधा से मिलता है, वह घनिष्ठता लाता है, परन्तु उसमें कोई जोश, उत्साह या आनंद नहीं होता है। दिव्य प्रेम सदाबहार नवीनतम रहता है। जितना इसके निकट जायेंगे, उतना ही इसमें अधिक आकर्षण और गहनता आती है, इसमें कभी भी उबासी नहीं आती और यह हमेशा प्रेरित–उत्साहित रखता है। इस प्रेम में सभी संबंध सम्मिलित होते हैं। स्त्री का प्रेम भावनात्मक अधिक होने के चलते दिव्य प्रेम होता है। मन और दिल को साफ स्वस्थ रखने के लिए दिव्यता से उत्तम कुछ भी नहीं। प्रेम है–मन की दिशा। आज का शब्द 'लव' लोभ–लाभ से जुड़ा हुआ है। लालच का प्रतीक हो गया है। मन की दिशा है–प्रेम। शरीर से शरीर का मिलन तो स्वत: हो ही जाता है। हम स्त्री से प्रेम करते हैं, क्योंकि वे हमें जन्म देती हैं और हमें खुद में समा लेती हैं और यह जब तक नहीं होता, तब तक हम उनकी काया और आत्मा की परिक्रमा करते रहते हैं। हम स्त्री को स्त्री होने के नाते ही प्रेम करते हैं।

स्त्री के प्रेम में कोई कारण नहीं होता, उसमें कोई गणित नहीं होता, सोच–विचार नहीं होता। स्त्री का प्रेम बौद्धिक नहीं होता, हृदय से और भावनात्मक होता है, अंधा होता है। स्त्री का प्रेम खोना मुश्किल है, क्योंकि प्रेम स्त्री के पूरे अस्तित्व की पुकार जो है। उसका प्रेम इंटयूटिव है, इंटलेक्युअल नहीं है। उसका प्रेम पूरा है, उसके पूरे शरीर से उसका प्रेम जन्मता है। स्त्री जीवनभर प्रेम कर सकती है, बिना कामवासना की माँग किये। स्त्री को प्रेम का आकर्षण होता है, सेक्स का नहीं। स्त्री का प्रेम रोएँ–रोएँ से गहन है, वह टोटल है। कोई भी चीज पूर्ण तभी होती है जब बौद्धिक न हो। स्त्री का प्रेम समग्र है। इंटिग्रेटेड है। स्त्री का प्रेम स्थिर और शांत होता है; क्योंकि हृदय से उद्‌भूत है।

स्त्री और पुरुष का प्रेम बिल्कुल एक दूसरे से विपरीत है। स्त्री का प्रेम स्थिरता का प्रतीक है, पुरुष का प्रेम गति की चंचलता का प्रतीक है। स्त्री प्रेम में सोच–समझकर धीरे से उतरती है, पुरुष कुछ सोचे–समझे बिना ही छलांग लगाता है। प्रेम होने की स्थिति में पुरुष बेकरार हो जाता है, स्त्री को अपने दिल की बात बताने के लिए, मगर स्त्री चीजें समझने के लिए खुद को समय देती है। वह सब कुछ संयम से करती है। पुरुष जल्दी स्त्री के प्रेम से ऊब जाता है, लेकिन जो स्त्री किसी पुरुष के प्रेम को एकबार स्वीकारती है, तो हमेशा के लिए और संपूर्णता से उसको स्वीकार कर लेती है। स्त्री एक पुरुष के प्रेम में पड़ने के बाद उसे खोना नहीं चाहती, उससे अलग होना नहीं चाहती; क्योंकि उसके प्रेम का स्वभाव है ठहरना। सच है कि स्त्री प्रेम को ही जीती है; उपन्यास की तरह और पुरुष प्रेम को कविता की तरह मात्र पढ़ता भर ही, जीता तो प्रेम को कभी नहीं।

स्त्री का स्वभाव : स्त्री शुरू में किसी पुरुष के प्रेम को जीतने के लिए, उसको पाने के लिए कुछ भी नहीं करेगी। वह उस पुरुष के प्रेम का इंतजार करेगी, लेकिन एक बार किसी पुरुष का प्रेम उसके जीवन में आता है तो उसे संभाल के रखने के लिए स्त्री कुछ भी कर सकती है। जब किसी स्त्री को किसी पुरुष का प्रेम मिल जाता है, उसके बाद वह पुरुष उससे प्रेम करें या न करें, उसकी ओर पहले जैसा लगाव रखें या न रखें, अगर वह किसी पुरुष को अपना बनाती है, उसके बाद जीवनभर उससे प्रेम करती है, उसके प्रेम में भटकाव नहीं होता। प्रेम की शुरुआत पुरुष करता है, लेकिन उसका अंत (आखिरी भाग) स्त्री पर जाकर ख़त्म होता है। स्त्री अपने प्रेम से कभी पीछे नहीं हटती, प्रेम उसकी रग–रग में समाया होता है।

स्त्री प्रकृति के अधिक नजदीक होती है। इस कारण वह प्रेम भी निश्छल आवेग से अर्पित करती है। उसका प्रेम हृदय व भावनाप्रधान होता है। स्त्री के लिए उसका प्रेमी उसकी पूरी दुनिया होती है। स्त्री का मस्तिष्क ज्यादा संतुलित होता है। सुनने के लिए स्त्री अपने मस्तिष्क के दोनों हिस्सों का समान रूप से प्रयोग करती हैं, जबकि पुरुष केवल एक ही हिस्से से काम चला लेते हैं। भावुक व अत्यधिक संवेदनशील होना, दिमाग की अपेक्षा दिल की सुनना स्त्री के मस्तिष्क की बनावट का ही परिणाम है। परिस्थिति को विश्लेषण करने की क्षमता, चीजों को याद रखना, किसी का दिमाग पढ़ना स्त्री–मस्तिष्क की बुनावट का ही खेल है।

स्त्री और पुरुष को समझना सूर्य और चाँद को समझने जैसा ही है। जब सूर्य प्रकट होता है तो चांद छिप जाता है; जब सूर्य अस्त होता है, तो चाँद प्रकट होता है। उनका आपस में कभी मिलन नहीं होता है। जब आंतरिक प्रज्ञा क्रियाशील होती है, तो बुद्धि खोने लगती है। स्त्री में अधिक अंतर्बोध होता है, उसके पास तर्क नहीं होता, अंतर्प्रज्ञा होती है और वह सच ही होता है। स्त्री अपनी अनुभूतियों से जीती है, अनुभव से जीती है और वह अनुभव इतनी गहराई से आता है कि वह उसके लिए सत्य ही हो जाता है। पुरुष स्त्री को नहीं समझ सकता। स्त्री के प्रेम में पूर्ण समर्पण होता है, उसका प्रेम टोटल ही होता है। स्त्री प्रेम का ही पर्याय है।

भिन्न–भिन्न शारीरिक संरचना ही स्त्री–पुरुष के बीच आकर्षण का कारण है और यही आकर्षण धीरे–धीरे प्रेम और यौन संबंधों में परिणत होता है। प्रेम के बिना भोग निकृष्ट है। पुरुष स्त्री की तरह कभी प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम करना स्त्री का स्वभाव है, पुरुष का नहीं। पुरुष प्राय: स्त्री शरीर के प्रति यौनाकर्षण को ही प्रेम समझ लेता है। पुरुष में प्रेम की गहराई नहीं होती।

स्त्री और पुरुष में आकर्षण को प्यार नही कह सकते। यह प्रकृति के अनुरूप और स्वाभाविक रूप में होता है। मगर जब उनका प्यार रिलेशन में बदलने लगे, तो देखा जाता है कि वह कितना सहज और एक–दूसरे के अनुकूल है। किसी से प्रेम हो जाना और उसे हासिल कर लेना ही प्यार नहीं है। हम इसे निभाते कैसे हैं, इसी का महत्व है। यह प्यार का अहसास ही है, जो इसके प्रति जुनून पैदा करता है। पुरुष अक्सर स्त्री के साथ प्रेम में रहकर भी प्रेम से वंचित ही रह जाता है ताउम्र। आज की स्त्री पहले जैसी नहीं रही है। अब वह जानती है कि अन्य सब बातों के अलावा, उसे अपने से यौनतृप्ति की सुखानुभूति पाने का भी मौलिक अधिकार है, जिससे उसे वंचित करना, उसके प्रति सबसे बड़ा अपराध है। प्रेम संबंध में भी प्रगतिशीलता और खुलापन जैसी स्थिति आयी है। अनजान और अनाड़ी या एक अनुभवी (खिलाड़ी) दूसरा अनाड़ी–इससे दोनों की चाल बिगड़ने के साथ दुर्घटना घटने की प्रबल संभावना रहती है।

स्त्री के चित्त में प्रेम है, एंबीशन नहीं। पुरुष के मन में प्रेम बहुत गहराई पर नहीं है, एंबीशन है। स्त्री के चित्त में प्रेम है, एंबीशन नहीं है। स्त्री–पुरुष समान बिल्कुल भी नहीं है, पूरी तरह असमान है। स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष है, दोनों में आकाश–पाताल का फर्क है। मौलिक रूप से दोनों विपरीत हैं। इसी वजह से उनके बीच आकर्षण है। स्त्री को कुछ और होने की जरूरत नहीं है।

इससे वह अपने समस्त स्त्री–धर्म को खो देगी। उसके जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसकी प्रतिभा में जो भी कीमती है, उसके स्वभाव में जो भी सत्य है, वह सब विनष्ट हो जाएगा। आखिर मनुष्य जीता किसके लिए है?प्रेम, शांति और आनंद के लिए ही न। साधनों के फेर में साध्य को भूलना गुनाह है। स्त्री साध्य है पुरुष के अधूरेपन को पूरा करनेवाली, परिपूरक पुरुष के जीवन में जो कमी है, उसे भरनेवाली। स्त्री के व्यक्तित्व में सृजनात्मक प्रेम की अबूझ गहराई है। प्रकृति ने नारी को एक अलग विशेषता दी है और वही उसकी श्रेष्ठता को मापने का मानदंड हो सकता है। प्रेम, ममत्व, आकर्षण, कोमलता, भावुकता, सहजता, सौंदर्यबोध यह सब नारी को प्रकृति की देन है। उसकी

मौलिकता को सम्मान मिलना चाहिए।

नारी पुरुष की पूरक सत्ता है, सबसे बड़ी ताकत है, पुरुष के अंधकारमय जीवन में रोशनी पैदा करती है। पुरुष के नीरस जीवन को सरस बनाती है, वह पुरुष के साथ नहीं चलती, वरन् उसे समय पड़ने पर शक्ति और प्रेरणा भी देती है, उसके जीवनयात्रा को सुखद, स्निग्ध, आनंदपूर्ण बनाती है, पुरुष की शक्तियों के लिए उर्वरक खाद का काम देती है। नारी धरा पर स्वर्गीय ज्योति की साकार प्रतिभा है। उसकी वाणी जीवन के लिए अमृत स्रोत है। उसके नेत्रों में करुणा, सरलता, आनंद के दर्शन होते हैं, उसके हास्य में समस्त निराशा और कड़वाहट मिटाने की अपूर्व क्षमता है, वह संतप्त हृदय के लिए शीतल छाया है, स्नेह सौजन्य की साकार देवी है, पुरुष की शक्ति के लिए जीवन सुधा है। त्याग उसका स्वभाव है, प्रदान उसका धर्म, सहनशीलता उसका व्रत और प्रेम उसका जीवन है। स्वयं प्रकृति ही नारी रूप में निर्माण, पालन–पोषण, संवर्धन का काम करती है। क्या माँ के सिवा संसार में ऐसी कोई हस्ती है, जो शिशु की सेवा, पालन–पोषण कर सके?प्रेम की शक्ति का ही साकार रूप होती है नारी। ईश्वर ने पुरुष को सशक्त एवं शक्तिशाली बनाया तो नारी को कोमल और प्रेममयी। ग्रहणशीलता उसका गुण है, निरंतर कार्यक्षमता उसका स्वभाव, सहनशीलता उसकी प्रकृति।

प्रेम में समर्पित स्त्री को रोकना असंभव है। किसी ने सच ही लिखा है–पुरुष का प्रेम समंदर–सा होता है...गहरा, अथाह..., पर वेगपूर्ण लहर के समान उतावला। हर बार तट तक आता है स्त्री को खींचने और स्त्री शांत है, मंथन करती है, पहले खुद को बचाती है इस प्रेम के ज्वार से...झट से साथ में नहीं बहती। पर जब देखती है लहर को उसी वेग से बार–बार आते, तो अंततः समर्पित हो जाती है समंदर में, गहराई तक डूबने का भी ख्याल नहीं करती, साथ में स्वतः बहने लगती है। समंदर अब शांत है, उछाल बहुत कम है, स्त्री उसके पास है। पर स्त्री मचल उठती है, इतना प्रेम देख प्रतिदान के लिए वो उड़कर बादल बन जाती है, अपना प्रेम दिखाने को तत्पर हो बरसने लगती है, पहले हलकी–हलकी, समंदर को अच्छा लगता है, वो भी बहने लगता है, कभी–कभी वेग से उछलता है प्रेम पाकर, फिर शांत हो जाता है। पर... स्त्री बरसती ही रहती है लगातार, बिना रुके–बिना थके। अब पुरुष से इतना प्रेम समेटना मुश्किल हो जाता है....अंदर अथाह प्रेम होने पर भी समंदर को ऊपर से शांत रहना है; क्योंकि उसे सब देखता है, आते–जाते जहाज, उगता–डूबता सूरज, तट पर खड़े लोग। मगर स्त्री तो प्रेम के उन्माद में बरस रही है, अंदर तक घुसने को व्याकुल...लेकिन जब अंदर उमड़ते–घुमड़ते ख्यालों के कारण सुनामी आने के डर से, समंदर से सँभलता नहीं तो वो रुकने कहता, कहीं और जाने कहता। ...लेकिन प्रेम में समर्पित स्त्री को रोकना असंभव है, जब देखती है कि समंदर अब नहीं चाहता तो वो दर्द के आवेग में बरसती है पास बुलाने को, स्त्री के आँसू खतरनाक होते हैं, बाढ़ आने लगती, पुल टूटने लगते, पानी घरों में बहने लगता, सब तहस–नहस होने लगता। फिर धीरे–धीरे बादल खत्म होने लगते हैं, आँसू सूख जाते हैं, सूखा–आकाल आ जाता है, स्त्री पत्थर हो जाती है। पर स्त्री का स्वभाव समर्पण है... वो फिर किसी समंदर के किनारे एक नई लहर आवेग में आती है, स्त्री बचने की कोशिश करती है, पर फिर बह जाती है समर्पित होने के लिए बहुत अंदर तक...सुदूर गहराई में। यह खुद के अधूरेपन को पूरा करने की शायद कोशिश है।

क्या किसी भी स्त्री–पुरुष के बीच एक खास लगाव सचमुच प्रेम होता है या महज दैहिक आकर्षण?पुरुष एक्टिव है, क्रियात्मक–विधायक है। स्त्री प्रतीक्षा करती है, पहल नहीं करती, आक्रमण नहीं कर सकती, प्रेम–निवेदन नहीं कर सकती, पहला कदम नहीं उठा सकती। स्त्री अनंत प्रतीक्षा है–मौन प्रतीक्षा, अनाक्रामक! लेकिन पैसिविटी, निष्क्रियता शक्तिहीन नहीं है। पत्थर जब पानी में गिरता है, फौरन गड्ढा बना लेता है, पत्थर एक्टिव है और पानी पैसिव, पत्थर नीचे गया कि पानी फिर अपनी जगह पर वापस लौट आता है। पुरुष की जीत प्राथमिक हो सकती है, अंतिम जीत स्त्री की ही हो जाती है। क्योंकि स्त्री में जीतने की कोई उत्सुकता नहीं होती, स्त्री की हार ही उसकी परम जीत होती है।

तात्विक है स्त्री–पुरुष का आकर्षण। पिन और चुम्बक में जैसा आकर्षण है, वैसा यह स्त्री–पुरुष का आकर्षण है। आकर्षण उसी वस्तु पर होगा, जिसकी हमें कमी है। पुरुष में कुछ तत्व वे नहीं, जो स्त्री को प्रदत्त है तथा स्त्री में कुछ तत्व का अभाव है, जिसकी पूर्ति एक पुरुष द्वारा संभव है। एक पुरुष अपने में स्त्री को महसूस करने के लिए और एक स्त्री स्वयं में पुरुष पाने हेतु एक–दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। औरत को पुरुष से ज्यादा खूबसूरती इसलिए बख्शी गयी है, क्योंकि औरत को 9 महीने पुरुष को अपने गर्भ में पालकर जन्म देना है। जिस साँचे में तलकर पुरुष सुंदर बनेगा, यदि वो साँचा ही खूबसूरत न हुआ तो उसमें से निकलनेवाला पुरुष भला कैसे सुंदर हो सकता है। संतानोत्पत्ति का दायित्व महिला सँभालती है, इसी क्रम में प्रकृति ने महिलाओं को शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक सुंदरता दी है। सब बायोलॉजी और साइकोलॉजी का खेल है।

नर–नारी का आपसी आकर्षण प्रेम उत्पन्न करता है, यही सृष्टि का नियम है। नारी की पवित्रता अधिक होगी तो उसका प्रेम भी ऊँचे दर्जे का होगा। नारी पवित्रता का अर्थ है अपने हृदय व मन में अधिक पुरुषों का कामुक चिंतन न करना। किसी एक को ही अपने दिल में बसाना। ऐसा करने से लक्ष्मी का अंश उस नारी में प्रवेश कर जाता है। पुरुष अपने अंदर सत्य व ईमानदारी को स्थान दे तो उसके अंदर विष्णु का अंश प्रवेश करेगा। स्त्री–पुरुष के बीच आकर्षण के पीछे प्रकृति की प्रजनन प्ररेणा ही काम करती है। दोनों जबतक कामुक उद्देश्य से मिलेंगे नहीं, तबतक उनमें अभाव बना रहेगा एवं अतृप्ति महसूस होगी।

महज उदात्त प्रेम ही यौन संबंध बनाने का अकेला कारण नहीं होता। नर–नारी यौन संबंधों के पीछे शारीरिक आकर्षण सुखानुभूति, चरम आनंद की चाह, प्रेमाकर्षण, अनुरक्तता जैसे अनेक कारण हो सकते हैं, मगर नारी में यौनोन्मुखता के पीछे भावनात्मक लगाव की भूमिका अधिक होती है। नारी, पुरुष से कहीं अधिक ऐसे मामलों में यौन संबंध की आकांक्षी हो उठती है, जहाँ मानसिक, भावनात्मक जुड़ाव महसूस करती है। जबकि पुरुष प्रकृतिवश अवसर की ही ताक में अधिक रहता है। नारी छोटी अवधि के सायोगिक संबंधों को लेकर खास तौर पर सतर्क और चूजी होती है। नारी के यौन संबंधोन्मुख होने की चाह लैंगिक आकर्षण, भौतिक सुख प्रेम के प्रागट्य और किसी के प्रति लगाव की अभिव्यक्ति या उद्दीप्त होने पर आवेग के शमन के लिए भी हो सकता है। या फिर यह आत्म गौरव या यौन गौरव को ऊँचा उठाने, लचीले सहचर को खुद तक आसक्त बनाए रखने की युक्ति के रूप में यौन संबंध की अभिमुखता देखी गयी है। प्रतिदान और प्रतिरोध भावना भी नारी यौन संसर्ग का कारण होता है। नारी यौनोन्मुखता के पीछे डार्विन 'फिमेल च्वाइस' की बड़ी भूमिका है। यह प्रकृति के अनुरूप और स्वाभाविक रूप से होता है।

यौन संबंधों को लेकर क्रांतिकारी बदलाव। आज साइंस की बदौलत सेक्स के बिना भी बच्चे पैदा किये जा सकते हैं। आनेवाले समय में लैब में गर्भधारण अधिक होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। सेक्स बच्चा पैदा करने के लिए नहीं, बल्कि शारीरिक जरूरत तक सीमित हो सकती है। अगर बच्चे बिना सेक्स के पैदा हो ही सकते हैं, तो फिर सेक्स की क्या जरूरत है?सेक्स का काम पुरुष, स्त्री की शारीरिक जरूरत को पूरा करना और उन दोनों का रिश्ता मजबूत करना है। अगर स्त्री पुरुष के बीच प्रेम है, तो उसका मुकाम शारीरिक संबंध बनाने पर ही पूरा होता है। सेक्स किसी को प्यार करने और किसी का प्यार पाने के लिए जरूरी और सम्मानजनक काम है।

आज समाज पूरी तरह बदल रहा है। सेक्स पैसे देकर भी हो रहा है।

बहुत से लोग पेशेवर जीवन में आगे बढ़ने के लिए सेक्स को हथियार बनाते हैं। ऐसे में किसी एक की शारीरिक जरूरत तो पूरी हो जाती है, लेकिन रिश्ता मजबूत होने या जज्बाती तौर पर जुड़ने जैसी कोई चीज नहीं होती। ऐसे में सिर्फ सेक्स का मतलब क्या है?

बदलते समय के साथ आज न सिर्फ इंसानी रिश्ते बदल रहे हैं, बल्कि यौन–संबंध को लेकर बर्ताव और रिश्तों के प्रति सोच भी बदल रही है। आज पोर्न देखने का चलन जितना बढ़ चुका है, उससे साफ जाहिर है कि प्रेम की जगह सेक्स की भूख कितनी ज्यादा है।

सेक्स गौण है, प्रधान प्रेम है। यदि सेक्स को ध्यान में रखकर प्रेम किया जाए तो वह क्षुद्रता है, अनुचित है, अनैतिक है। किन्तु प्रेम में सेक्स हो इसमें कोई बुराई नहीं। क्योंकि बिना प्रेम के सेक्स उसी प्रकार है, जिस प्रकार कोई कुत्ता हड्डी इस भ्रम से चूसता है कि जो रक्त हड्डी चुसने से उसके मुख से निकल रहा वह रक्त वस्तुतः हड्डी से मिल रहा। उसी प्रकार रस सेक्स में नहीं, मानस में है और मन में वासना इतनी प्रधान होती है कि यह ख्याल ही मिट जाता है कि इससे श्रेष्ठ भी कुछ है। हाँ, प्रेम की परिधि में आए सेक्स को नितांत रूप से भोजन और स्वप्न जैसी क्रियाओं के जैसे ही मानना चाहिए। सिर्फ काम की फिक्र अधोमुखी है और प्रेम ऊर्ध्वमुखी। इसलिए प्रमुखता प्रेम की है, सेक्स की नहीं। सेक्स प्रेम के दायरे में आता है, प्रेम सेक्स के दायरे में नहीं।

महिलाएँ सचमुच प्रेम करती हैं। पुरुष सिर्फ सेक्स के लिए ही स्त्री से प्रेम करते हैं। उनमें सिर्फ यौन लिप्सा पायी जाती है, प्रेम नहीं। जबकि महिलाएँ प्रेमपूर्ण होती हैं और सिर्फ प्रेम के नैसर्गिक इज़हार हेतु सेक्स के लिए तैयार होती हैं। महिलाएँ प्रेम करती हैं, मगर पुरुष सिर्फ कामुक होते हैं। महिलाएँ प्रेम के चलते पुरुष के साथ सेक्स के लिए तैयार होती हैं। प्रेम की शुरुआत पुरुष करते हैं और उसे निभाती महिलाएँ हैं। प्रेम का विकास आत्मीयता का आश्रय पाकर होता है, प्रेम देने की भाषा है, समर्पण का प्रयोजन है, फिर भी निष्प्रयोजन है। महिलाएँ प्यार के खत्म होने की भी पहचान रखती है और यही कारण है कि रिश्तों को खत्म करने या उसे निभानेवाली अधिकतर महिलाएँ ही होती हैं। दोनों की यौन प्राथमिकताएँ एक दूसरे से अलग होती हैं। प्रेम एकात्म का अनुभव है।

महिला–पुरुष एक–दूजे के जुनून हो सकते हैं, प्रेम हो सकते हैं, शत्रु हो सकते हैं, आराध्य हो सकते हैं, पर कभी भी एक दूसरे के मित्र नहीं हो सकते। पुरुष बिना सेक्स की चाह के किसी महिला को अपना दोस्त नहीं मान सकता, हाँ महिला जरूर मान सकती है। पुरुष का प्रेम जहाँ वासनात्मक होता है, वहीं स्त्री का प्रेम अखंड होता है, पवित्र होता है। सचमुच, प्रेम सेक्स के दायरे में नहीं, सेक्स प्रेम के दायरे में आता है। प्रेम और देह के अंतर्सम्बन्धों का यही सच है।

स्त्री का प्यार कभी कम या कमजोर नहीं होता। कहा गया है कि मर्द गजरता बादल होता है, लेकिन औरत होती है बरसती बूँदें। औरत की मोहब्बत कभी कमजोर नहीं होती, कम नहीं होती और अपनी मोहब्बत को कभी भूल नहीं सकती। औरत के लिए प्यार जादू–सा होता है, दिल में विस्फोट जैसा सबसे शक्तिशाली होता है। हाँ, कोई भी औरत अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रेम नहीं कर सकती है। औरत को प्यार से जीता जा सकता है, लेकिन उसे समझने में पूरी जिंदगी ही खत्म हो सकती है। औरत पुरुष के मुकाबले जानती कम,परन्तु समझती ज्यादा है और वही सुनना पसंद करती है, जो उसे पसंद होता है। प्यार कैसे किया जाता है, इसे सिर्फ औरत ही जानती है।

प्यार तो किसी को किसी से भी, कभी भी, कहीं भी हो सकता है। बस, बेवजह! किसी से प्यार करना गलत नहीं है, लेकिन प्यार की भी कुछ मर्यादाएँ होती हैं। प्यार वो खूबसूरत अहसास है, जिसे हर स्त्री–पुरुष अपनी जिंदगी में एक बार जरूर महसूस करता है और वह उसमें हमेशा जिंदा रहता है। औरत दिल की साफ और नाजकु होती है, संबंधों के प्रति काफी झुकाव होता है, अपनी ही आस्था, मान्यता होती है। बिना प्रेम कोई भी संबंध नहीं टिक सकता। सुंदर रिश्ते प्यार से ही मजबूत होते हैं।

प्रेम प्रक्रिया है, संज्ञा तो नहीं। करो तो है, ना करो तो गया। जब तुम नहीं करते, खो जाता है। जो तुम करते हो, वही होता है। प्रेम श्वास जैसा है, लो तो है, नहीं लो तो नहीं है। प्रेम का संबंध से कोई वास्ता नहीं, हानि–लाभ से कोई मतलब नहीं, दोनों के त्याग से है। इसमें यात्रा का आरंभ तो है, फिर अंत नहीं है। सागर में उतरते तो हैं, लेकिन फिर किनारा नहीं मिलता। तुम पास भी आ जाते हो और छू भी नहीं पाते। मछली सागर में प्यासी है और सागर को खोज रही है, कहाँ है। प्रेम जैसा कुछ भी नहीं है, यह अपने आपमें पर्याप्त है। धर्म में एक ही है समग्रता से स्वीकार करना। जब तुम्हें साफ दिखाई देता हो, तो हर स्त्री अपने आपमें सुंदर ही होती है। वीणा में कुछ भी गलत नहीं है। तुम्हें पता नहीं कि इसे किस भाँति बजाया जाए।

जीवन में प्रेम से बड़ी कोई चुनौती नहीं और प्रेम सदैव समझ से परिपूर्ण होता है। जीवन में जो कुछ भी सुंदर, गहन और श्रेष्ठ है–वह प्रेम है और प्रेम सदा अनासक्त है। प्रेम 'मिलना' है–आगे–पीछे क्या?प्रेम पर्याप्त है, कुछ और नहीं चाहिए। लोभी प्रेम नहीं कर सकता, क्योंकि प्रेम में देना पड़ता है अपने आपको परिपूर्णता से, पीछे कुछ भी न बचाते हुए। लोभ से सब नष्ट हो जाता है, प्रेम से सब उपलब्ध हो जाता है। जब वासना खो जाती है, तब सौंदर्य का अनुभव होता है और जब सौंदर्य का अनुभव होता है तो भीतर प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम यानी पूजा, प्रार्थना, अहोभाव, कृतज्ञता। ऐसे भोगो कि त्याग भी बना रहे, ऐसे त्यागो कि भोग भी बना रहे–यही जीवन की परम कला है।

प्रेम का अनुभव पृथ्वी और स्वर्ग का सम्मिलन है, मानवीय चेतना में प्रेम उच्चतम झलक है। प्रत्येक वह वस्तु जो अस्तित्व में है, परस्पर निर्भरता में ही है, कुछ भी एकतरफा नहीं हो सकता। जीवन एक आदान–प्रदान है, यह एकपक्षीय नहीं हो सकता, अन्यथा सारा संतुलन खो जाएगा। प्रेम के बारे में चाहे कितने ही तथ्य और सूचनाएँ एकत्रित करते चले जाओ, इस संकलन से प्रेम को नहीं जान सकते। तुम्हें प्रेम में उतरना पड़ेगा, इसमें विलीन होना होगा, इसका स्वाद लेना होगा, साहस करना होगा। पूर्ण प्रेम इतनी गहनता से तृप्त करता है कि कोई किसी और के बारे में सोच भी नहीं सकता, दूसरे का स्वप्न देखना भी असंभव है। स्वप्न तो अतृप्ति के कारण ही जन्मता है। तुम अन्य स्त्रियों के बारे में सोचते हो; क्योंकि तुम्हारा अपनी स्त्री के साथ तृप्तिदायी संबंध नहीं रहा है। क्योंकि स्वयं को उड़ेल देना चाहता था और यह इस संबंध में संभव नहीं हो पाया, इसलिए मन सारी जगह में दौड़ता–भटकता अशांत बना है। समस्या तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं। तुम एक के साथ चूकते जाओगे तो तुम अनेक के साथ चूकते जाओगे। सितार की भूल नहीं है–बजाने की कला ही नहीं आती।

स्त्री काव्य और पुरुष गणित। गणित और काव्य, बुद्धि और हृदय, तर्क और समर्पण की भाषा अलग–अलग होती है। गणित में दो और दो चार ही होते हैं। काव्य में कभी दो और दो पाँच भी हो जाते हैं, कभी तीन भी रह जाते हैं। काव्य तो रहस्य है। स्त्री काव्य ही है, उन्हें तो सदा संस्कृति, नैतिकता, शुद्धता, कौमार्य का प्रतिमान बनना पड़ता है, खुली छूट नहीं है। जब कोई पुरुष किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, तो वह प्रेमिका खोज रहा है। जब कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रेम में पड़ती है तो वह किसी ऐसे को खोज रही है, जो उसको माँ बना देगा, जो उसके बच्चे का पिता बनना चाहेगा। जब कोई स्त्री किसी पुरुष को पाने का प्रयास करती है, तो उसकी कसौटी अलग ढंग की होती है–शक्तिशाली, धनवान पुरुष क्योंकि उसे सुरक्षा चाहिए। जब पुरुष किसी स्त्री की खोज कर रहा है, तो केवल पत्नी की चाहत कर रहा है, जिसके साथ वह आनंदित हो सके,रह सके। स्त्री–पुरुष को बच्चों के माध्यम से प्रेम कर रही है; क्योंकि एक

स्त्री बुनियादी रूप से माँ है, माँ होने की खोज में है।

स्त्रैण स्वभाव परिवर्तनशील है। एक स्त्री के लिए अपने मन को एक राय पर कायम रख पाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसके मन में तरलता है, वह एक प्रक्रिया जैसा अधिक है, उसमें ठोसपन बहुत कम है। यही उसका सौंदर्य, प्रसाद, गरिमा, आकर्षण है। वह नदी जैसी अधिक है, परिवर्तित होती चली जाती है। स्त्री कोमल है, अनाक्रामक है, ग्रहणशील है, यही उसका सौंदर्य है। उसे वैसा ही होता है। उसमें पुरुष से अधिक गहरी लयबद्धता है, वह पुरुष से अधिक पद्यमय, काव्यमय, संगीतमय है, अधिक गोलाई लिये हुए है, अधिक भावना करनेवाली है। स्त्रैण ऊर्जा भागती है, भागने का खेल खेलती है। आग का स्वभाव जलाना है, लेकिन आग तुम्हारे पीछे नहीं दौड़ती। स्त्री हमेशा निष्कलुष, निर्मल, कुँआरी की कुँआरी। उसका कुँआरापन कभी खंडित नहीं होता। अछूती, अस्पर्शित, कमल के पत्ते के समान। बादल आते हैं, घिरते हैं, गरजते हैं, बरसते हैं, बिजली चमकती है; परन्तु आकाश के पास कोई स्मृति भी नहीं है। बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ न कुछ अच्छा है, न बुरा–सब प्रकृति और सृष्टि की बात है। होना मात्र ही इतनी बड़ी सम्पदा है कि और कुछ चाहने की बात ही नादानी है।

पुरुष संकल्प है, स्त्री समर्पण। संकल्प तो किया जाता है–समर्पण होता है अपने आप, बिना प्रयास, बेशर्त। समर्पण कोई कृत्य नहीं है। यह चित्त की दशा है। जीतकर पाने से हारकर पाने का ज्यादा मजा है। पानी भी तुम्हारे द्वारा पीये जाने पर प्यासा है। तुम्हीं जल को नहीं खोज रहे हो, जल भी तुम्हें खोज रहा है। तुम बुलाते भी हो तो तुम्हारा बुलाना पूरा है, हार्दिक है? तुम्हारा रोआँ–रोआँ उसमें सम्मिलित है कि एक शर्त इनकार किये चली जा रही है। हम मुफ्त चाहते हैं, दाव पर अपने को नहीं लगाते। दो नावों पर सवार होते हैं। प्रेम अकारण है, कुछ भी थोपता नहीं। प्रेम स्वच्छ दर्पण है और प्रेम के सिवाय जीवन में जो कुछ है, वह दर्पण पर मैल है, धूल है, गंदगी है। प्रेम शब्द हृदय में कुछ और ही गूँज लाता है, कोई कमल खिल जाते हैं, कोई द्वार खुलते हैं। प्रेम में 'हाँ' है, स्वीकार है। प्रेम में एक अहोभाव है, गीत है, नृत्य है, उत्सव है। प्रेम जीवंत है।

पुरुष को प्रेम भी चाहिए, किन्तु स्त्री को तो मात्र प्रेम ही चाहिए। स्त्री प्रेम में ही दुबकना, मरना, रहना, भोगना चाहती है, प्रेम में ही खाना, पीना, ओढ़ना, पहनना, दिखाना चाहती है। स्त्री अक्सर पोषक आहार की कमी से नहीं, प्रेम की कमी से एनिमिक हो जाती है। स्त्री इसलिए जटिल हो जाती है कि पुरुष सरल नहीं हो पाते। स्त्री प्रेम की आशा में देह सौंपती है, पुरुष देह के लोभ में प्रेम करता है। प्रेम एक ऐसी क्रिया है जिसे दो व्यक्ति एक होकर भी दो बने रहते हैं।

स्त्री और पुरुष के प्रेम में अंतर होता है। स्त्री जब किसी से प्रेम करती है तो वह अपना सर्वस्व अर्पण करती है, अपने अस्तित्व को दाव पर लगाकर अपने प्रेम को पाना चाहती है। वह 'मैं' से 'हम' होना चाहती है। लेकिन जब एक पुरुष प्रेम करता है तो सिर्फ लेना चाहता है, केवल पाना चाहता है, देना वह नहीं जानता। स्त्री के लिए प्रेम केवल अनुराग न होकर देह और आत्मा का ऐसा वरदान है, जो न तो बंधन मानता है, न किसी की परवाह करता है, उसका प्रेम शर्तहीन होता है, इसलिए प्रेम एक विश्वास है, स्त्री केवल एक को ही अपना सकती है। अपने प्रेमी के लिए कुछ भी करने को तैयार होती है, सर्वस्व देकर प्रेमी को संतुष्ट करना चाहती है।

आज बदलते सामाजिक परिवेश में प्रेम का स्वरूप बदल चुका है। महत्वाकांक्षी समय में आग का प्रेम अशरीरी, वायवीय, प्लेटोनिक नहीं रहा। साहचर्यजनित है। आज प्रेम की शाश्वत भावना नहीं रही। आज प्रेम खालीपन दूर करने, ऊब मिटाने का साधन है। स्त्री–पुरुष संबंध तेजी से बदल रहे हैं। पाप–पुण्य की धारणा भी बदल चुकी है। आज एकनिष्ठ प्रेम व शारीरिक पवित्रता अर्थहीन है। रिश्तों में बिखराव की स्थिति है। प्रेम जल्दी आता–जाता है आज। आज यहाँ, कल वहाँ अविश्वसनीय हो चला है प्रेम। आज स्त्री भी प्रेम व विवाह के नैतिक प्रतिमानों का उल्लंघन करती दिख रही है। प्रेम का स्वरूप आज जन्मों का बंधन नहीं रहा, सुविधानुसार तोड़ा–मरोड़ा जा सकनेवाला संबंध बन गया है। शारीरिक, मानसिक तुष्टि का साधन बनकर रह गया है आज का प्रेम।

आज प्रेम में एकनिष्ठता की भावना खत्म हो रही है। आज प्रेम एक अविश्वसनीय वस्तु बनता जा रहा है। प्रेम एक वैयक्तिक अनुभव बनता जा रहा है। परंपरागत नैतिक मूल्यों का कोई महत्व नहीं रह गया है। प्रेम और बुद्धि एक साथ नहीं रह सकते। आज तेजी से प्रेम संबंध बन रहे हैं, टूट रहे हैं। विवाह आज पास्परिक समझौते का एक बंधन है, जो व्यक्तिगत तथा पारस्परिक होता है। कोई भी रिश्ता आज ज्यादा प्रभावित रूप में नहीं। रिश्ते सुविधानुसार बनते–मिटते हैं आज।

स्त्री–पुरुष के बीच का संबंध विशुद्ध रूप से निजी मामला हो। चयन की पूरी आजादी समानता के आधार पर दोनों को हो। वही पुरुष स्त्री के प्रेम के लिए राजी हो सकता है, जो अहंकार को छोड़ने को राजी हो। दोनों की लाषा अलग है, यात्रा अलग है। एक दूसरे को समझना मुश्किल। दोनों के सोचने, होने का ढंग अलग है। स्त्री प्रकृति के अधिक नजदीक होती है। इस कारण वह प्रेम भी निश्छल आवेग से अर्पित करती है। उसका प्रेम हृदय व भावनाप्रधान होता है। स्त्री के लिए उसका प्रेमी परमात्मा, पूरी दुनिया होता है। देह की राजनीति उसे अपने जाल में फँसाने हेतु नये–नये औजार तलाशती है। जबकि प्रेम की अनुभूति मात्र से देह–प्राण खिल उठते हैं। एक भावनात्मक दुर्बलता के रूप में प्रेम ने मुनष्य को जिस तरह पूरी तरह से गिरफ्त में लिया, वह उसका प्लेटोनिक व रूमानी रूप ही रहा है।

स्त्री को ऐसे पुरुष की आकांक्षा नहीं, जो मुग्धभाव से उसकी देह को निहारे, सराहे, भोगे; बल्कि उसे एक ऐसे पुरुष की जरूरत है, जिसके सामने वह अपना मन खोल सके। परन्तु पुरुष के लिए स्त्री हमेशा देह रूप में ही रहती है। हर स्त्री ऐसे पुरुष से प्रेम करना चाहती है, जो उसके प्रति संवेदनशील हो। आज की स्त्री उसी से ताल–घंड बना सकती है, जो एक साथ शालीन और मजबूत दोनों हो। आज की स्त्री पारंपरिक स्त्री की तरह परम पावन, कर्तव्यभाव समझकर अपात्र से प्रेम नहीं कर सकती।

नारी परतंत्रता–स्वतंत्रता : शरीर विज्ञान तथा मनोविज्ञान की दृष्टि। स्त्री को सदा पुरुष के अधीन रहने का विधान क्यों? स्त्री कभी भी स्वतंत्र न रहे–ऐसा क्यों? उक्त शंका का उत्तर है कि प्रायः स्त्री के शरीर तथा मन की बनावट ही प्राकृतिकतः ऐसी है कि जिससे स्त्री का कल्याण सदा परतंत्र रहने में ही माना गया है, स्वतंत्र रहने में नहीं। बालकों का पालन–पोषण, वात्सल्य, सेवा–परायणता, सहनशीलता आदि भावप्रधान गुणयुक्त हृदय के बिना नहीं हो सकते। अतः प्रकृति ने स्त्री को इन गुणों से युक्त भावप्रधान हृदयवाली ही बनाया है, विचारप्रधान मस्तिष्कवाली नहीं बनाया। पुरुष के शरीर की अपेक्षा स्त्री का शरीर कोमल तथा निर्बल होता है। इनकी बनावट को देखते हुए सदा परतंत्र रहने में इनका कल्याण वैसे ही है, जैसे मनःप्रधान तथा बुद्धि–बल एवं शरीर–बल से हीन कोमल बालकों का कल्याण परतंत्र रहने में ही होता है। भावप्रधान तथा बुद्धिबल और शरीरबल से हीन बालक तथा स्त्रियों को कोई चतुर चालाक बलवान बहकाकर या बल का प्रयोग करके संकट में डाल दे–इस करुणापूर्ण दृष्टि से ही उन्हें परतंत्र रहने का वैदिक विधान किया गया है।

पुरुष में भोक्तापन और स्त्री में भोग्यपन का भाव स्वभाव से ही रहता है। नर और नारी में भोक्ता और भोग्य का भाव पशु–पक्षियों में भी देखा जाने के कारण सहज है, आगन्तुक नहीं। यद्यपि शारीरिक सुख का उपभोग दोनों करते–कराते हैं, दोनों ही भोक्ता और दोनों ही भोग्य हैं, तथापि स्त्री अपने को

भोग्य ही मानती है, भोक्ता नहीं मानती और पुरुष अपने को भोक्ता ही मानता है, भोग्य नहीं मानता।

शरीर विज्ञान तथा मनोविज्ञानमूलक कल्याणकारी दूरदर्शिता युक्त करुणादृष्टि ही कारण है, अन्यथा मोद– प्रमोदप्रदायिनी, वंशवर्धिनी, लोक–परलोक सहगामिनी, अर्धांगिनी को वृथा परतंत्र रखने का विधान भला कैसे होता! अतः आधुनिक स्त्रियों द्वारा समानता की माँग करना शरीर विज्ञान तथा मनोविज्ञान के विरुद्ध अदूरदर्शितामूलक होने के कारण अकल्याणकारक होने से आदरणीय व आचरणीय नहीं है।

परस्पर गुण वैचित्र्य ही तो सृष्टि का कारण है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों की प्राप्ति में स्त्री की ही प्रधानता होती है। शास्त्र प्रमाणानुसार मनुष्य शास्त्रविधि से विवाहित पत्नी में संतान उत्पन्न करने पर ही पितृऋण से उऋण होता है, अन्य प्रकार से नहीं। स्त्री का पुरुषों के प्रति और पुरुषों का स्त्री के प्रति कामासक्त होना प्राकृतिक नियमानुसार स्वाभाविक है, क्योंकि इसके बिना सृष्टिचक्र नहीं चल सकता, परन्तु स्वतंत्रता की स्थिति में यह कामासक्ति अमर्यादित होने पर व्यक्ति तथा समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर देती हैं। अन्य उपाय पवित्रता नष्ट कर देती है। पश्चिम में स्वतंत्रता के कारण पति–पत्नी का सच्चा प्रेम ही नहीं हो पाता, हर समय एक दूसरे के बारे में संदेह बना रहता है कि कहीं दूसरे से संबंध करके हमें छोड़ न दे। जहाँ परस्पर प्रेम भाव ही नहीं, वहाँ सुख कहाँ?भावप्रधान होने के कारण स्त्रियों पर भावना का प्रभाव अधिक होता है।

स्त्री–गमन के दो उद्देश्य हैं–पुत्रोत्पादन द्वारा वंश की रक्षा तथा पितृऋण से उऋण होना, शरीर को हानि न पहुँचाते हुए सुखभोग करना। शास्त्र मर्यादानुसार संतान उत्पादक काम को भगवान ने अपनी विभूतियों में गिना है–'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ (गीता 7/11) तथा 'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः'(गीता 10/28)

वर्तमान स्वतंत्रता के युग में कामुकता की आवोहवा में तथा अधिक उम्र तक अविवाहित रहने की स्थिति में स्त्री–पुरुष अति कामोत्तेजित बने रहते हैं। अविवाहित स्त्री–पुरुष ही नहीं, विवाहित स्त्री–पुरुषों के भी पथभ्रष्ट हो जाने की पल–पल संभावना रहती है, इस प्रकार वंशशुद्धि की हानि हो सकती है। इन्द्रियों का अपने विषय में राग–द्वेष होता ही है और जब ज्ञानी सिद्ध महापुरुष भी अपने स्वभाव के परवश होकर आचरण करते हैं, तो जान–बूझकर स्वतंत्रता को प्रश्रय क्यों?

स्पष्ट है कि मनुष्य नेत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सात्विक, राजस, तामस जैसे विषयों का सदा सेवन करता है तथा वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियों से सात्विक, राजस, तामस–जैसी क्रियाओं को करता है और ऐसे ही भावों–विचारों से भावित रहता है, उसका प्रभाव वीर्य में भी पड़ता है। ऐसी दशा में उस वीर्य से उत्पन्न संतान में भी उनका प्रभाव होना अनिवार्य है।

नारी स्वतंत्रता के नाम पर दिशाविहीन न हो। आधुनिकता की दौड़ में उनके बहकने, गलत कदम उठाने की संभावना बनी रहती है तथा अंत में पछताने के अलावा कुछ हाथ नहीं रहता। स्वतंत्रता की आड़ में शोषण होता है। स्वतंत्रता जब स्वच्छंदता की ओर बढ़ने लगती है, तो परिणाम गुलामी होती है।

स्वतंत्रता के बदले अर्थों से न जाने कितने परिवर तबाह हुए हैं, चाहे वह लिव इन रिलेशन हो, एकाकी जीवन हो या घर के सदस्यों में विखराव। आजादी की परिणति अंततः बहकती हुई बर्बादी में ही होती है। स्त्री–पुरुष दोनों के ही अलग–अलग प्रकृतिजन्य काम है। चलना भी होगा अनुरूप उसी के जो होकर तय पहले से आया है।

प्रेम की व्यापक प्रतिष्ठा है। प्रेम एक संपूर्ण जीवन मूल्य है। प्रेम स्त्री के लिए सर्वस्व अर्पण है और पुरुष के लिए सर्वस्व ग्रहण। नये समय की दहलीज पर खड़ी आज की स्त्री कामनाओं की अभिव्यक्ति और ग्लैमर की रोशनी में चुँधियाई स्त्री द्वारा सेक्सुअलिटी और सेंसुएलिटी का उद्यम तथा विवेकहीन उत्सवीकरण दोनों एक ही बात नहीं। वर्जना उतारने के बाद भटकना ही होता है। क्या देह और पेट की भूख अपनी आदिम प्रवृत्तियों में बिल्कुल एक–सी होती है। क्या देह और प्रेम के बीच कोई अंतर्सम्बन्ध है?अपने अधिकार के लिए लड़ने का मतलब यह नहीं कि महिलाएँ पुरुष हो जाएँ।

सच तो यह है कि पुरुष स्त्री की तरह और स्त्री पुरुष की तरह प्रेम नहीं कर सकती।

प्रेम में देह और देह में प्रेम। कहा गया है कि प्रेम अथाह सागर है, तो देह एक कश्ती! जो डूबना जानता है, प्रेम उबारता है उसको। नदी कभी डुबोती नहीं, लोग डूबते हैं अपनी ही उल्टी–सीधी हरकतों से। प्रेम देह से परे हो सकता है, लेकिन देह प्रेम के बिना हो जाता है शिथिल। प्यार करते हो तो करते रहो न, किसने रोका है, तो इसमें देह कहाँ से आती है?देह से प्रेम करना क्या जरूरी है। मन से प्रेम करना काफी नहीं है क्या?

सदियों से प्रेम का चेहरा प्लेटोनिक किस्म का रहा है। प्रेम की बात छिड़ते ही रूमानी–सा माहौल बन जाता है, बिना रूमानी हुए प्रेम पर चर्चा प्रायः होती ही नहीं। इसकी अनुभूति मात्र से देह–प्राण स्पंदित हो जाते हैं। भावनात्मक दुर्बलता प्रेम का सबसे सबल पहलू है और प्लेटोनिक रूप में प्रेम को समझने–महसूस करने की परंपरा पुरानी है। आखिर यह प्रेम इतना नाजुक, भावुक क्यों है?इतना संवेदनशील, अनियंत्रित क्यों है?जो प्रेम में 'गिरता' है, उसकी शरीरमुद्रा, भावभाषा, व्यवहार, गतिविधियों में भारी मनोदैहिक परिवर्तन आ जाते हैं, एक अतार्किक अबूझ विशिष्ट तौर पर कल्पित संसार में वह संक्रमित कर जाता है और उस छायाभासी रोमांटिक संसार में तर्क, बुद्धि, प्रश्नाकुलता की जगह नहीं होती। बुद्धि, संशय से अलग होने के कारण प्रेम में नाजुकपन है।

कभी प्रेम में कोई देह 'गिर' सकती है, तो कभी किसी देह में प्रेम 'गिर' सकता है। जब देह प्रेम में गिरती है तो अपने होने की स्मृति का अतिक्रमण कर जाती है। जब प्रेम की गिरफ्त में देह होती है, तब प्रेम देह को नष्ट ही कर डालता है, प्रेम उसकी रिक्त हुई जगह पर काबिज हो जाता है। देह प्रेम के जादू से आविष्ट होकर उसके रहस्य में खो जाती है। प्रेम ही देह को आविष्ट नहीं करता, देह भी प्रेम को अपने अधिकार में भरपूर जकड़ लेती है। देह प्रेम पर हावी हो जाती है और प्रेम को अपनी गहराई की जड़ में खींच लेती है, तब प्रेम देह के दायरे में सिमटकर देह के व्याकरण से परिभाषित होने लगता है।

देह प्रेम में एक उत्तेजनापूर्ण आनुभाविक संवेगी प्रत्यय है जहाँ खुद देह प्रेम को नियंत्रित निर्धारित–संचालित करती है, मनमाने ढंग से अर्थ भरती है, ऐसे में देह को प्रेम का सम्मोहन आविष्ट नहीं करता, प्रेम को देह की उत्तेजना व कामना अपनी चपेट में ले लेती है, प्रेम को घेरती देह पदार्थमय ऊष्मा लिये होती है। देह तो प्रेम की पवित्र भावसत्ता का भारी अवमूल्यन कर देता है, प्रेम को देह की तल पर उतारकर व्यापक तौर पर उसकी उदात्त अलौकिक दैवीय गरिमामय निष्कलुष छवि को नेस्तनाबूद कर दिया जाता है।

प्रेम में जब देह 'गिरती' है तो उसके पास गिरने का कोई ठोस कारण, तर्क, व्याख्या, विश्लेषण नहीं होता और जब देह में प्रेम गिरता है, तब वह प्रेम तार्किक हो जाता है। प्रेम में देह के प्रत्यय से प्रेममुक्त होता है, वायवीय अमूर्त, प्लेटोनिक–सा, कलात्मक और सब्जेक्टिव। लेकिन देह में प्रेम ऑबजेक्टिव है। यहाँ प्रेम उपयोग–उपभोग की वस्तु है। प्रेम के बहाने प्रेम और देह की गरिमा यहाँ तार–तार हो जाती है। देह में प्रेम को जाननेवाले देह और प्रेम दोनों से ही चूक जाते हैं और प्रेम में देह में डूबनेवाले देह और प्रेम की

अनछुई पवित्रता में बस जाते हैं। प्रेम भावनाओं का कोमल ज्वार है, जिसे महसूस किया जा सकता है, पर स्पर्श नहीं। प्रेम पूजा व इबादत है, जिसमें पवित्रता के संग मिलन–लगन, अगन–तपन होती है। सच्चा प्रेम सबूत नहीं माँगता, यदि माँगता है तो वह प्रेम नहीं।

कामभाव देह है प्रेम की, प्रेम है आत्मा। प्रेम देह है प्रार्थना की और प्रार्थना है आत्मा। प्रेम जब तक देह तब तक स्थूल, जब सूक्ष्म तब आत्मा और इस आत्मा के साथ अनुभूति की सांद्रता, बिन बोले संवाद का अलंकरण। प्रेम अमृत है। इसके बिना जीवन फीका बेरंग बेस्वाद बेमजा। देह से परे है प्रेम।

स्त्री प्रेम का स्रोत है। अपने हर रूप में स्त्री प्रेम को ही परिभाषित करती रहती है। प्रेम सिर्फ देह नहीं और न ही आवेग है, यह कर्तव्य और संवेदना का अनोखा प्रवाह है, जीने का मकसद है, मतलब है, प्रेरणा है। आज का प्रेम प्रेम में नहीं, देह में स्थिर है, नारी देह में सिमट गया है प्रेम। जो होठों से शुरू होकर नेत्रों पर समाप्त हो जाता है। आज का प्रेम बेदर्दी से अपनी हद लाँघ रहा है। प्रेम के मायने खत्म होते जा रहे हैं। उसे समझने, जानने, महसूस करने की इच्छ ही समाप्त होती जा रही है। प्रेम का आधार आज सेक्सुअल हो चला है जो जल्दी ही दम तोड़ देता है। आज का प्रेम मन से नहीं, तन से रहता है। मन का प्रेम कभी मैला या फीका नहीं होता। प्रेम में कोई हलन्त, प्रश्नवाचक चिह्न, कौमा, अर्धविराम और पूर्णविराम होता ही नहीं।

अशोक कुमार सिंह
जनमत शोध संस्थान, दुमका
9431339804

तुम मानो या न मानो

तुमसे प्रेम करना है
यह सोचकर नहीं किया था तुमसे प्रेम
सुसताने को तलाशा जब–जब कोई छाँव
चिलचिलाती धूप में तन्हा चलते
तब–तब पेड़ की घनी छाँव–सी मिली तुम

मिली अक्सर बिजली के खंभे–सी राह में खड़ी
अंधेरी रात में सुनसान सड़क से
जब भी कभी गुजरना हुआ

थका–हारा जब–जब लड़खड़ाया
लरजते हुए चाहा टिकाना कहीं अपना सिर
वहीं पाया तुम्हारा कंधा

और तो और
जब भी पड़ी जरूरत कभी किसी के मदद की
वहाँ सिर्फ और सिर्फ तुम्हारे ही हाथ दीखे
सुनाई पड़ी सबसे पहले तुम्हारी ही आवाज
संघर्ष और दुख के क्षणों में
जब भी अंदर से पुकारा किसी को

और इस तरह
चलते–चलते थककर एक दिन
जहाँ ठहरा रात्रि विश्राम के लिए
वह तुम्हारा ही घर होगा
यह सोचकर भी नहीं ठहरा था वहाँ

कोई जादुई मंत्र नहीं है मेरी कविता
यह सच है दोस्तो
कविताओं से कुछ नहीं होता
स्वीकारता हूँ तुम्हारी बात

वैसे भी कविताएँ
कोई जादुई मंत्र नहीं होती
कि पढ़ने–लिखने मात्र से ही
बदल जाएगी दुनिया

फिर मेरी कविताएँ तो
कविताएँ हैं भी नहीं
मैं तो ठीक–ठीक
कविता की परिभाषा तक नहीं जानता
न ही दर्ज करा रखा हूँ
कवियों की सूची में अपना नाम ही

मेरी कविताएँ जो कुछ–कुछ
कविताओं जैसी लग रही है तुम्हें
एक बयान है अपने समय के विरुद्ध
अभिव्यक्ति है
अपने भीतर की हजारों असहमतियों की

एक हस्तक्षेप है
अपने आस–पास की दुनिया में
आवाज है
विपक्ष में बैठे अकेले आदमी की
रोशनी की तलाश में निकले
अंधेरों से घिरे आदमी की बेचैनी है

और तो और
यह भी सच है
कि हम उतरकर सड़कों पर
खुद बंदूक उठा नहीं सकते
पर याद रखना
हजारों सुस्त पड़े हाथों को
बंदूक उठाने के लिए तैयार तो कर ही सकते हैं हम!

सूर्यप्रकाश मिश्र
दुर्गाकुंड, वाराणसी
मो. 9839888743

क्षणभंगुर

मैं भीष्म नहीं क्षणभंगुर हूँ
मेरी प्रत्यंचा के स्वर में
कोई भीषण टंकार नहीं
पर अन्यायी का साथ मुझे
मरते दम तक स्वीकार नहीं

निर्लिप्त काल के माथे पर
सच्चाई का नव अंकुर हूँ

मैं सीमित नहीं प्रतिज्ञा में
मेरा पथ बहुआयामी है
मन नायक है अधिनायक है
पर सच का ही अनुगामी है

माना क्षमता कम है मेरी
पर गाता विद्रोही सुर हूँ

कैसे मानेगा राजधर्म
जो राष्ट्रधर्म अनुयायी है
जनसेवा का आग्रह करता
सारा मानस व्यवसायी है

ऐसे प्रतिकूल समय में भी
युग परिवर्तन में आतुर हूँ।

रचना

रचना तुम पत्थर मत बनना
वाणी बनना स्पन्दन की
साधारण अक्षर मत बनना
रखना कह देने का मिजाज
जीवन से जुड़े सवालों को
जो हाथ उगाते हैं रोटी
सहलाना उनके छालों को

करना मानवता की बातें
चुप रहकर ईश्वर मत बनना

नंगे पाँवों के साथ–साथ
चलने की बात किया करना
आँखों के पानी की भाषा
सुनने की बात किया करना

कहना शब्दों से मुखर रहे
साहस बनना डर मत बनना

सरसों फूले या अमलतास
बेकार लग रही हर क्यारी
क्योंकि रोटी का एक रंग
सारे रंगों पर है भारी

हिस्से में मिले खुरदुरापन
सह लेना सुंदर मत बनना।

परख

एक अदद कहानी

कृष्ण कुमार यादव
निदेशक डाक सेवाएँ
लखनऊ (मुख्यालय) परिक्षेत्र
मो.9413666599

एक बार फिर संपादक ने उसकी कहानी खेद प्रकट करते हुए लौटा दी थी। एक उभरता हुआ साहित्यकार से न जाने कितने पन्ने और स्याही खर्च करने के बाद एक कहानी तैयार होती है, उसपर से तुर्रम ये कि रचनाएँ टाइप कराकर भेजी जानी चाहिए। डाक खर्च बढ़ रहा है और उसपर से नाम–पता व टिकट लगा एक और लिफाफा भेजना, ताकि संपादक महोदय स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना भेज सकें। कुछ संपादक तो सूचना देना भी उचित नहीं समझते और पता लिखे लिफाफे पर दूसरा पता चिपका उसे व्यक्तिगत उपयोग में लाने लगते हैं और अगर कहानी छप भी गयी तो जरूरी नहीं कि उसका मानदेय मिले ही। आत्मसंतुष्टि ही सबसे बड़ी संतुष्टि है। इसी फार्मूले को अपनाकर अधिकतर पत्र– पत्रिकाओं के संपादक यह मान लेते हैं कि रचनाकार पत्रिका में अपना नाम देखकर ही धन्य हो जाएगा। न जाने क्या–क्या विचार उसके दिलोदिमाग में कौंध रहे थे।

पिछले तीन सालों से वह प्रयास कर रहा है कि उसकी एक कहानी किसी पत्रिका में छप जाए। आखिरकार बेरोजगार में भी वह अपना पेट काटकर कहानी की टाइपिंग और डाकखर्च के पैसे देता था, पर कहानी छपने का नाम नहीं ले रही थी। उसपर से बीबी रोज ताना देती कि अपना घर तो सम्हल नहीं रहा और चले हैं कहानियोंसे क्रान्ति पैदा करने व सम्मान सुधारने। वह यह सोचकर अपमान के घूंट चुपचाप पी जाता कि किसी न किसी दिन उसकी कहानी छपेगी और तब बीबी को उसकी रचनात्मकता का अहसास होगा। पर इस बार भी जब उसकी कहानी खेद सहित लौट आयी, तो उसकी रचनात्मकता कुलबुला उठी। इस बार की कहानी में तो उसने ग्रामीण परिवेश की एक सच्ची घटना को पन्ने पर उतारा था। आखिर प्रेमचंद भी तो ग्रामीण परिवेश और उसकी विसंगतियों पर कलम चलाकर 'कथा–सम्राट' बने थे, फिर वो क्यों नहीं?

इस बार शहर जाते समय उसने यह सुनिश्चित कर लिया कि पत्रिका के संपादक से मिलकर अवश्य पूछेगा कि उसकी कहानियों में कमी क्या है, जो बार–बार खेद के साथ लौटा दी जाती है। एक मैग्जीन–स्टॉल पर जाकर उसने पूछा कि अमुक पत्रिका का कार्यालय कहाँ है, पर उसने कंधे उचकाकार कहा–पता नहीं। अपने झोले से उसने पत्रिका का तुड़ा–मुड़ा अंक निकालकर ध्यान से पता पढ़ा और उस मैग्जीन स्टॉल पर खड़े व्यक्ति से फिर पूछा तो उसने बताया–''तीन चौराहे आगे जाकर दाहिनेवाली गली में अंतिम मकान।'' उस व्यक्ति द्वारा बताये गये पते पर जब वो पहुँचा तो जीर्ण–शीर्ण अवस्था में खड़ा एक–दो मंजिला मकान पाया, जिसके गेट पर धूल–धूसरित अवस्था में पत्रिका और उसके संपादक का नाम लटका हुआ था, ऐसा लग रहा था मानो वर्षों से उसे किसी ने छुआ तक न हो।

उसने घर में प्रवेश के लिए कॉल–बेल बजायी, तो एक नवयुवती ने आकर गेट खोला और पूछा–किससे मिलना है?जवाब में उसके संपादकजी का नाम बताया, तो उसने सीढ़ियों की तरफ इशारा कर दिया। लालटेन से भी मद्धिम रोशनीवाला बल्ब सीढ़ियों पर रास्ता दिखा रहा था, अन्यथा वह जरूर लुढ़क गया होता। सीढ़ी के अंतिम पायदान पर कदम रखते ही सामने कमरे में दाढ़ी बढ़ाये एक बुजुर्ग व्यक्ति किताबों के बीच विराजमान दिखे। उसे देखते ही उन्होंने पान की पीक बगल में रखी डस्टबिन में दे मारी और पूछा–कहिए जनाब! किससे मिलना है?जी, आपसे मिलना है और फिर सकुचाते हुए उसने दोनों हाथ जोड़ लिये। अच्छा बैठिए, कहाँ से आये हैं?जी, रामपुरबा से...ठीक है, काम बतायें। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि बात की शुरुआत कहाँ से करें?उसने संपादक का खेदवाला पत्र और कहानी निकालकर उसके सामने रख दिया। अच्छा...तो आप भी कहानियाँ लिखते हैं, पर इसे हम नहीं छाप सकते। आखिर क्यों?इससे पहले कि वे जवाब देते, पैंट–शर्ट पहने एक नवयुवक ने प्रवेश किया और संपादकजी उसके सम्मान में हाथ जोड़ कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये। क्या लेंगे–ठंडा या गरम?कुछ भी नहीं, आज जरा जल्दी में हूँ। मैडम ने ये विज्ञापन आपकी पत्रिका हेतु भिजवाया है, पर ध्यान रखिएगा कि पत्रिका का अगला अंक जल्दी आ जाय नहीं, तो विज्ञापन का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। और हाँ, मैडम की ये कहानी भी अगले अंक में प्रकाशित कर दीजिएगा।इस बार उन्होंने कहानी के साथ छापने के लिए फोटो दिया है, कह रही थीं कि पिछले फोटो में उनका व्यक्तित्व निखरकर सामने नहीं आया। देख लीजिएगा, कहीं कोई वाक्य नहीं जँच रहा हो, तो अपने हिसाब से परिमार्जित कर लीएिगा। अरे साहब! आप भी क्या मजाक करते हैं। मैडम तो अपनी कलम से न जाने कितनों का भविषय रोज बनाती–बिगाड़ती है, फिर मेरी क्या औकात कि उनकी कलम में खोट निकालूँ। अच्छा अब चलता हूँ। सम्पादकजी! उस व्यक्ति को छोड़ने सीढ़ियों तक गये और जबतक वे लौटकर आए, उसने अपने को सहज कर लिया था।

हाँ, तो आप कुछ कह रहे थे। जी, मैं अपनी कहानी के बारे में बात करना चाह रहा था कि बार–बार आप खेद सहित लौटा देते हैं। सम्पादकजी ने उसे घूरती हुई निगाहों से देखा और बोले–तो आप यह चाहते हैं कि हर अंक में मैं आपकी कहानियों को स्थान दिया करूँ। वह धीमे से बोला–हर अंक में तो नहीं, पर एकाध कहानी तो छाप ही सकते हैं। अभी–अभी प्राप्त विज्ञापन के प्रूफ पर से नजर उठाते हुए संपादकजी ने कहा–इससे मेरा क्या फायदा होगा। इस प्रश्न से वह किंकर्तव्यविमूढ़ रह गया। जी, मैं समझा नहीं। अरे, इसमें समझना क्या है?पत्रिका तो फ्री में छपती नहीं है, उसके लिए हमें सरकारी विभागों से विज्ञापन लेने के लिए तरह–तरह के पापड़ बेलने पड़ते हैं। आप जानते ही हैं कि छपास की भूख सबमें होती है और हर अधिकारी घर बैठे–बैठे साहित्यकार बनना चाहता है। विज्ञापन पाने के लिए हमारी मजबूरी है कि उनकी रचनाओं को प्राथमिकता के आधार पर पत्रिका में स्थान दिया जाए। फिर अधिकारी ही क्यों, आजकल नेताओं में भी अपने ऊपर साहित्यकार का तमगा लगाने की होड़ लगी हुई है। बड़े–बड़े शहरों में प्रतियोगिता परीक्षाओं में असफल अभ्यर्थी अपनी रचनात्मकता को लेखों के रूप में उतारकर संपादक को बेच देते हैं और उसकी कीमत ले लेते हैं। उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि रचना किसके नाम से छपी?आम पाठक यह समझता है कि फलां नेता की ज्वलंत मुद्दों पर कितनी अच्छी पकड़ है, जो आंकड़ों सहित भविष्य की रूपरेखा खींचते हुए सार्थक लेख लिखता है...सब गोरखधंधा है। यहाँ रचनाएँ नहीं नाम बिकता है। एक आम आदमी कितनी भी अच्छी रचना कर ले, कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, पर कोई अधिकारी, नेता या चर्चित शख्सियत ऐसा करे, तो उसकी समीक्षाएँ छपती हैं, गोष्ठियाँ होती है, पुरस्कार मिलते हैं, पुस्तकालयों में उसकी किताबें धड़ल्ले से खरीदी जाती हैं और साहित्य–सेवा के नाम पर विदेश– यात्रा का मौका मिलता है।

उसने संपादकजी को टोकते हुए कहा–''पर आम आदमी तो पत्र–पत्रिकाओं में अच्छी रचनाएँ पढ़ना चाहता है। प्रेमचंद अपनी रचनाओं के चलते ही 'साहित्य सम्राट' कहलाए, पर वे तो कोई अधिकारी या नेता नहीं थे।'' संपादकजी ने उसे खा जानेवाली निगाहों से देखा और कहा–''आज के पढ़े–लिखे नौजवानों में तो यही कमी है कि बात–बात पर अतीत का राग अलापना शुरू कर देते हैं। वे वर्तमान और भविष्य का सामना करने का माद्दा ही नहीं रखते। किसी किताब की चार पंक्तियाँ पढ़ ली तो उसी को दुनिया का सबसे बड़ा सत्य मान उसकी तलाश में निकल पड़े।'' उसने उन्हें टोकना चाहा, पर वे धाराप्रवाह बोले जा रहे थे–''बेटा! आज जमाना प्रेमचंद का नहीं

है। उनकी रचनाएँ सरेआम जलायी जा रही हैं, पर समाज में कोई सार्थकता नहीं होती। ये लोग तो अब जन्मतिथि व पुण्यतिथि के दिनों के मेहमान बनकर रह गए हैं। चौराहों पर इनकी मूर्ति लगाकर हम एक ही झटके में साहित्य और समाज को दिए गए इनके योगदान का एहसान उतारना चाहते हैं। कुछ फूलमाला चढ़ाकर उस सुगंध में हम उनके साहित्यिक योगदान की सुगंध को विस्मृत करना चाहते हैं।

कभी साहित्यिक रचनाओं पर धारावाहिक और फिल्में बनती थीं, पर अब तो हमारी पुरानी फिल्मों की री–मेक और विदेशी फिल्मों व धारावाहिक के चरित्रों को भारतीय अंदाज में ढालकर बाजार में उतार रहे हैं। देखा नहीं 'देवदास' फिल्म बनते ही कैसे 'देवदास' उपन्यास के पेपरबैक संस्करण की बाजार में धूम सी आ गयी। तुम्हें क्या लगता है, इन किताबों के लोग साहित्यिक रुचियों से प्रेरित होकर पढ़ने के लिए ले गये?नहीं.. नहीं..शाहरूख खान और ऐश्वर्या राय के आवरण चित्र से सजे 'देवदास' उपन्यास लोगों की व्यक्तिगत लाइब्रेरी का हिस्सा बनकर उनकी सामाजिक हैसियत में बढ़ोत्तरी करते हैं कि जिस उपन्यास के आधार पर वो फिल्म बनी है, वो तो उनकी लाइब्रेरी में मौजूद है।

सम्पादकजी का लंबा भाषण सुनते–सुनते उसका गला सूखने लगा था। उसने पानी के गिलास की ओर इशारा किया, तो पहले उन्होंने अपना गला तर किया और फिर उसी गिलास को धुलकर उसे भी पानी पीने को दिया। संपादकजी अपना भाषण नहीं छोड़ रहे थे और उसे लग रहा था–काश! किसी भी तरह उसकी एक कहानी छप जाती। उसने संपादकजी की ओर याचनाभरी निगाहों से देखा और पूछा–''क्या आपने मेरी कहानी ध्यान से पढ़ी है?संपादकजी ने ना के लहजे में सिर हिलाते हुए कहा–कितनों की कहानियाँ पढूँ?एक दो हों तो पढूँ भी, पर यहाँ तो रोज दसियों कहानियाँ छपने के लिए आती हैं। अचानक संपादकजी को क्या सूझा कि उन्होंने उसकी कहानी पर सरसरी निगाह डालना शुरू कर दिया। कहानी तो अच्छी लिख लेते हो, पर समकालीन नहीं है। समकालीन शब्द उसने पहली बार सुना था, सो उत्सुकतावश पूछ ही लिया कि 'समकालीन' मायने क्या होता है?संपादकजी ने उसकी तरफ नजरें उठायीं और कहा–'आज समाज में जो घटित हो रहा है, उसपर अपनी कलम चलाओ।' पर मैंने तो वही लिखा, जो मेरे गाँव में घटित हुआ था.... लेकिन तुम्हारा गाँव पूरे समाज का प्रतिबिम्ब तो है नहीं। वैसे भी गाँव पर कहानियाँ लिखने का चलन पुराना हो गया है। कुछ शहरी संस्कृति पर भी नजर डालो–अधखुले वस्त्र, खुला यौनाचार, बलात्कार, गिव एंड टेक का नियम, सावन को फेल करती बाल लहराकर उन्मुक्त जी रही नवयौवनाएँ, कॉलगर्ल एवं जिगोलो कल्चर, एकल परिवार में अवसादग्रस्त मानवीय जीवन, पुरुष–स्त्री के बदलते संबंध और टूटती वर्जनाएँ, बिना विवाह के बच्चे पालने की ख्वाहिश, लिव इन रिलेशनशिप, होमोसैक्सुअल व लेस्बियन रिलेशनशिप, लेकिन फिर फिल्मों और साहित्य में अंतर क्या रह जाएगा, वह बोल पड़ा। संपादकजी एक दार्शनिक की तरह उसकी समस्याओं का निराकरण कर रह थे–''बेटा! आज के समाज में जो बिकता है, वही बेचा जाता है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से साहित्य अछूता नहीं रह सकता। आखिर उपभोक्तावाद का सबसे बड़ा बाजार शहरी वर्ग ही तो है और अगर वह यही सब साहित्य में भी देखना चाहता है तो हमारी मजबूरी है। जब हम उनके मनमाफिक लिखेंगे, तभी तो वे पत्रिकाएँ खरीदेंगे। आखिर हमें भी तो अपनी पत्रिका चलानी है। यहाँ समाज सेवा करने कोई नहीं आया है और तथाकथित समाज सेवा के पीछे भी व्यक्ति का स्वार्थ निहित होता है।''

उसके पल्ले बहुत कुछ पड़ा भी था और नहीं भी। वह अपना झोला सँभालते हुए उठ खड़ा हुआ और दोनों हाथ जोड़कर संपादकजी से विदा माँगी। रास्ते भर वह सोचता रहा कि आखिर किस तरह की कहानी लिखी जाए कि संपादकजी छापने को तैयार हो जाएँ। गाँव पहुँचते–पहुँचते कहानी का खाका उसके दिलोदिमाग में तैयार हो चुका था। घर पहुँचकर उसने भोजन किया और फिर जुट गया एक अदद समकालीन कहानी लिखने के लिए। अपनी बीबी के तानों से बेखबर उसके सामने स्कूल के दिनों में उमड़ी तमाम कल्पनाएँ शब्दों का रूप लेकर उतर रही थीं। जिन फन्तासियों को वह वास्तविक जीवन में नहीं जी सका था, उन्हें अपने को नायक रूप में ढाल पन्नों पर उतार रहा था... वो टूटती यौन–वर्जनाएँ, दमित इच्छाएँ, पुरुष–नारी के बदले संबंध–सब कुछ उसने ऐसा गढ़ा, मानो कोई जीवन्त तस्वीर खींच रहा हो। एक कदम और आगे बढ़ते हुए किशोरावस्था में साथियों के साथ लिये गये मजे, जिसे संपादकजी ने होमोसैक्सुअलटी जैसा कुछ कहा था, को भी कहानी में विस्तार दे दिया।

अगली सुबह जब वह सोकर उठा, तो उसकी आँखों में एक अजीब–सी चमक थी। उसने समकालीनता की कुंजी ढूँढ़ ली थी। उस दिन वह बिना समय गँवाये ही डाकखाने की ओर बढ़ गया। काउंटर खुलते ही उसने दो लिफाफे खरीदे और एक लिफाफे पर अपना नाम–पता लिखकर कहानी के साथ संलग्न कर संपादकजी के पते पर भेज दिया। इस बार उसे ज्यादा दिन तक इंतजार नहीं करना पड़ा। एक महीने बाद ही उसे संपादकजी का एक पत्र मिला–''आपकी रचना आगामी अंक हेतु स्वीकार हो गयी है। अंक की प्रति समय से आपको प्रेषित की जाएगी।'' उसने पत्र को भावावेश में आकर चूम लिया और इंतजार करने लगा अपनी एक अदद कहानी के छपकर आने की।

प्रिय श्री जायसवाल,
सुसंभाव्य का अंक मिला। आपकी पत्रिका पहली बार देखी और आपका संपादकीय पढ़कर लगा जैसे आपके मन में विचारों का तूफान उठ रहा है और आपकी कलम उसे लिख नहीं पा रही है। आपके एक पृष्ठ के संपादकीय में देखें कितने विचार विंदु हैं-- भारतीय संस्कृति, मानव मूल्य, वैश्वीकरण, उदात्तीकरण, स्त्री प्रेम, दलित साहित्य, रचनाशीलता, साहित्य अंतः करण की औषधि, सकारात्मकता, स्थानीयता, संवेदना ,धरती, डिजिटल वर्ल्ड, ग्लोबलाइजेशन तथा मनुष्यता, आदि।यह विचारों का विस्फोट है, जो बताता है कि आप इस संसार से कितने चिंतित हैं, और उसे कितनी जल्दी सुंदर तथा स्वस्थ बना सकते हैं। एक लेखक की यही चिंताएं हो सकती हैं और आप इसी लेखकीय दायित्व को पूरा कर रहे हैं। आप की यह प्रतिबद्धता प्रशंसनीय है और आपका चिंतन प्रवाह आपकी प्रतिभा का कायल हो जाता है, पर पाठक इतनी तेजी से इतने विचारों को आत्मसात नहीं कर पायेगा। आप अपनी रफ़्तार थोड़ी कम कर देंगे तो पाठक अधिक समृद्ध होगा। शुभकामनाओं सहित,
कमल किशोर गोयनका
पूर्व प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय
पूर्व उपाध्यक्ष, केंद्रित हिंदी संस्थान, आगरा
मोबाइल :09811052469
ईमेल : kkgoyanka@gmail.com

ऐतिहासिक तथ्य

योगेशचन्द्र चटर्जी : संघर्ष, संघर्ष और संघर्ष

उषा निगम
74 कैंट, कानपुर–208004
उ0प्र0, मो0–09792733777

युक्त प्रांत में काकोरी ट्रेन डकैती में जिन क्रांतिकारियों को प्रसिद्धि मिली, उनमें से एक नाम योगेशचन्द्र चटर्जी का भी है। योगेशचन्द्र चटर्जी के जीवन की क्रांति–यात्रा पर्याप्त लंबी रही। काकोरी षड़यंत्र केस से बहुत पहले उनके क्रांतिकारी जीवन का आरंभ हो चुका था। उस समय उनकी आयु मात्र पंद्रह वर्ष थी और स्थान था बंगाल प्रांत। 1895 में ढाका जिले के नवदिया ग्राम में योगेशचन्द्र चटर्जी का, जिन्हें सभी आदर से 'योगेश दा' कहते थे, जन्म हुआ था। उस कालखंड में बंगाल गुलाम भारत का सर्वाधिक शिक्षित और राजनीतिक रूप से जागृत प्रांत था। वहाँ पराधीनता से मुक्त होने की इच्छा बलवती होती जा रही थी। अनेक गुप्त समितियों की स्थापना हो चुकी थी। ऐसे ही किसी समिति से योगेश दा जुड़ गये थे। बाद में प्रसिद्ध अनुशीलन समिति के सदस्य बने।

अंग्रेजी सरकार को 1818 के बंगाल 'रेग्यूलेशन–्प्प्प्' के अंतर्गत तमाम अधिकार मिले हुए थे। केवल संदेह के आधार पर सरकार किसी को भी नजरबंद कर सकती थी, गिरफ्तार कर सकती थी और कोई भी दंड दे सकती थी। सरकार कुछ भी कर सकती थी। योगेश दा को भी गिरफ्तार किया गया। उनपर बेइन्तहाँ जुल्म किये गये। कसकर पिटाई, सिर के ऊपर मलमूत्र की बाल्टी पलटवाना, जबर्दस्ती वीर्य स्खलन कराना–सभी कुछ उनके साथ हुआ। इसके बावजूद यह वीर अटल रहा।

यह सब कोलकाता के खुफिया पुलिस विभाग के ऑफिस नं0 4, किड स्ट्रीट में हो रहा था। फिर उन्हें कोलकाता प्रेसिडेंसी जेल में डाल दिया गया। वहाँ उन्होंने 6 दिन का अपने जीवन का पहला अनशन किया। उनकी माँग थी कि उन्हें प्रेसिडेंसी जेल के स्थान पर किसी अन्य जेले में रखा जाए। 6 दिनों के बाद उनकी यह माँग पूरी की गयी।

सन् 1920 की आम माफी में योगेश दा भी रिहा कर दिये गये। उन्होंने भी असहयोग आंदोलन में भाग लिया था। आंदोलन के स्थगन ने गाँधीजी और उनकी अहिंसा से उन्हें दूर कर दिया। वे पुनः सशस्त्र धारा की ओर लौट गये। यही वह समय था, जब शचीन्द्रनाथ सान्याल ने युक्त प्रांत में क्रांतिकारी संगठन को पुनर्गठन का प्रयास आरंभ कर दिया। बंगाल का अनुशीलन समिति के दो सदस्य बनारस में पहले से ही काम कर रहे थे, जिनको क्षमता पर सान्याल को विश्वास नहीं था। सान्याल ने 'बंदी जीवन' में बहुत विस्तार से इसकी चर्चा की है। 1922 के गया कांग्रेस के अधिवेशन में प्रतुल गांगुली से उन्होंने अनुशीलन समिति के प्रतिनिधि सतीशचन्द्र की आलोचना की थी। उसी के बाद योगेशचन्द्र चटर्जी को जुलाई 1923 को बनारस भेजा गया था। इस परिवर्तन के सकारात्मक परिणाम हुए। शीघ्र ही सान्याल और योगेश दा में अच्छा तालमेल बन गया। सान्याल को एक अनुभवी कार्यकर्ता की आवश्यकता थी, वह उन्हें मिल गया था। 1923 तक सान्याल ने युक्त प्रांत और पंजाब के बीच लगभग 23 विप्लव केन्द्र स्थापित कर लिये थे। अब उन्होंने योगेश दा को कानपुर बुला लिया। कानपुर भी क्रांतिकारी आंदोलन का महत्वपूर्ण केन्द्र बन रहा था। परिस्थितियाँ अनुकूल हो गयी थीं। बंगाल की अनुशीलन समिति की बनारस शाखा तथा सान्याल के क्रांतिकारी संगठन ने एक होने का निर्णय ले लिया। 1924 को एक नये नाम और एक नये विधान के साथ 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' का जन्म हुआ।

कानपुर में आने के बाद सान्याल ने उनका परिचय कानपुर के सभी क्रांतिकारियों से कराया। यहाँ वे सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य और रामदुलारे त्रिवेदी से मिले। वे रामदुलारे त्रिवेदी के साथ शाहजहाँपुर गये, रामप्रसाद बिस्मिल से मिले। उन दिनों भगत सिंह भी गृह त्यागकर कानपुर आये हुए थे। योगेश दा का उनसे भी भेंट हुई। इस प्रकार संगठन अनेक महत्वपूर्ण कड़ियाँ जुड़ती चली गयीं। रामदुलारे त्रिवेदी लिखते हैं–''योगेश बाबू ने युक्त प्रांत आकर अनेक जिलों का खूब दौरा किया। कार्यकर्ताओं से मिले, उन्हें सैनिक कार्यों के लिए उत्साहित किया और 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' को अच्छी तरह संगठित किया। लगभग 23 जिलों में संगठन की शाखाएँ फैल गयीं। 1924 में कानपुर बोल्शेविक केस के कारण सान्याल भूमिगत हो गये। वे बंगाल चले गये। योगेश दा हि0प्र0सं0 की प्रगति की रिपोर्ट लेकर कोलकाता जा रहे थे, तभी उन्हें हावड़ा स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। यह घटना 18 अक्टूबर, 1924 ई0 की है। पुलिस को उनके पास से एक पत्र मिला था। इस पत्र के द्वारा पुलिस को उत्तरी भारत में क्रांतिकारी आंदोलन के प्रसार के विषय में विस्तृत जानकारी मिली थी। इसलिए उन्हें तुरंत ब्रह्मपुर जेल में डाल दिया गया था।

अब तक योगेश दा के प्रयासों से संगठन बहुत मजबूत हो चुका था। दो प्रमुख व्यक्तियों के बंदी हो जाने के बाद भी हि0प्र0सं0 के कार्य में कोई व्यवधान नहीं आया। दूसरी पंक्ति के नेताओं ने संगठन के कार्य को सँभाल लिया था। 1925 में सान्याल का लिखा हुआ 'रिवोल्यूशनरी' नामक पर्चा पंजाब से रंगून तक एक साथ एक दिन में बाँटा गया। इसने यह प्रमाणित किया कि क्रांतिकारियों का एक बृहद् संगठन मौजूद है। 9 अगस्त, 1925 को बिस्मिल के नेतृत्व में काकोरी ट्रेन डकैती डाली गयी। 26 सितम्बर, 1925 से बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ हुईं। इस समय योगेश दा पहले से ही कोलकाता की हजारीबाग जेल में थे। काकोरी कांड में उनका कोई हाथ नहीं था। उसकी योजना से लेकर कार्यान्वय तक में वे कहीं शामिल नहीं थे। लेकिन संगठन के मजबूत स्तंभ होने के कारण उन्हें इस केस में अभियुक्त बनना ही था और दंडित भी होना था। उनपर राजद्रोह का आरोप लगाया गया था।

लगभग 18 महीने चले काकोरी केस ने कई मोड़ लिये। अंततः योगेश दा को आजीवन कारावास की सजा मिली। जेल में भी काकोरी बंदियों का संघर्ष निरंतर चलता रहा। यह लड़ाई उनके अपने अधिकारों की थी। विभिन्न जेलों में रहते हुए भी योगेश दा और उनके सभी साथियों ने अनशन किये। योगेश दा ने लखनऊ जेल में यह अनशन आरंभ किया। 48 दिनों तक चलनेवाले इस अनशन ने तत्कालीन समाचार पत्रों एवं राजनीतिज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। 'प्रताप' और उनके स्वामी श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्यार्थीजी ने इन जांबाजों के लिए जिस सदाशयता का परिचय दिया, उसे क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास सदैव याद रखेगा। सरकार के आश्वासन देने पर विद्यार्थीजी ने भी क्रांतिकारियों को आश्वासन दिया था। अतः सभी क्रांतिकारियों ने अनशन त्याग दिया था। बाद में अंग्रेजी सरकार ने अपना वादा पूरा नहीं किया।

अभी योगेश दा को जेल में बहुत लंबा समय व्यतीत करना था। वे शांत व्यक्ति नहीं थे। अभी तक सरकार ने क्रांतिकारियों की माँग पूरी नहीं की थी। 13 सितम्बर, 1929 को भूख हड़ताल के दौरान यतीन्द्रनाथ दास की शहादत हुई। फिर 20 जून, 1935 को फतेहपुर केन्द्रीय कारागार में गणीन्द्रनाथ बनर्जी शहीद हुए। उस समय योगेश दा बख्शी के साथ आगरा जेल में थे। गणीन्द्र की शहादत को सुनकर दोनों ने अनशन आरंभ कर दिया। उनका यह अनशन 142 दिन तक चला (यहाँ पर एक तथ्य पाठकों के सम्मुख रखना चाहती हूँ।) प्रायः क्रांतिकारियों पर लिखते समय एक ही घटना के अनेक

विवरण मिलते हैं। तिथियों का भी अंतर हो जाता है। जैसे यहाँ सुधीर विद्यार्थीजी ने स्वयं योगेश दा से हुई वार्ता के आधार पर लखनऊ जेल लिखा है (शहीदों के हमसफर, पृ. 44)। वहीं मन्मथनाथ गुप्त ने 'भारतीय क्रांतिकारियों का इतिहास' (पृ. 258) में आगरा जेल की चर्चा की है।)

योगेश दा के इस अनशन की कहीं कोई चर्चा नहीं हुई। कानपुर के सुरेन्द्रनाथ पांडे के प्रयासों के फलस्वरूप रामकृष्ण खत्री, राजकुमार सिन्हा; फिर सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य और रामदुलारे त्रिवेदी ने अनेक प्रयास किये। वे 'प्रताप' प्रेस गये (तब तक गणेश शंकर विद्यार्थी जी शहीद हो चुके थे)। अपनी तरह से साधिकार अपनी बात रखी। तब 'प्रताप' ने इस अनशन की खबर को प्रकाशित किया। अनेक सभाओं में अनेक दलों ने अनशन का पक्ष लिया तथा सरकार पर माँगों को पूरी करने का दबाव डाला। रफी अहमद किदवई ने क्रांतिकारियों को पूरा सहयोग दिया। उन्होंने ही नींबू की शिंकजी पिलाकर यह अनशन तुड़वाया था। सभी ओर से आश्वस्त होकर विशेष रूप से जेल के आई.जी. का आश्वासन पाने के बाद योगेश दा ने यह अनशन तोड़ा था। उनकी माँगें थीं–(क) गणीन्द्रनाथ बनर्जी की मृत्यु की तहकीकात की जाए। (ख) सभी राजनीतिक बंदी जेल में एक साथ रखे जाएँ। (ग) दैनिक समाचार पत्र की व्यवस्था हो। (घ) अंदमान के राजनीतिक बंदियों को भारतीय जेलों में स्थानांतरित किया जाए।

अनशन तोड़ने के बाद अंग्रेजी सरकार ने योगेश दा की माँगें पुनः अस्वीकार कर दी। अतः उन्होंने दोबारा अनशन आरंभ किया, जो 111 दिन तक चला। इस बार योगेश दा की दो माँगें मान ली गयीं। युक्त प्रांत के सभी राजनीतिक बंदियों को नैनी जेल में एक साथ रखा गया। उन्हें समाचार पत्र की सुविधा भी प्रदान की गयी।

काकोरी केस का फैसला होने के उपरांत सभी अभियुक्त प्रांत के विभिन्न जेलों में स्थानांतरित कर दिये गये थे। जब योगेश दा फतेहगढ़ जेल में थे, उस समय शिव वर्मा और विजय कुमार सिन्हा ने उन्हें जेल से छुड़ाने का प्रयास किया था। इस प्रयास में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रशासन अत्यधिक सतर्क है। मुक्त कराने के प्रयास में सफल होने के अवसर बहुत कम थे, उनके अपने फँस जाने के अवसर अधिक थे। क्रांतिकारी संगठन अब और हानि नहीं उठाना चाहता था। हि0प्र0सं0 के आगरा केन्द्र से योगेश दा को दोबारा जेलमुक्त कराने का प्रयास किया गया था। इस बार उन्हें आगरा से लखनऊ जेल ले जाया जाना था। कानपुर में ट्रेन बदलनी थी। इसी का लाभ उठाना था। आगरा केन्द्र पर चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, शिव वर्मा, डॉ0 गया प्रसाद ने मिलकर योजना बनाई थी। दल का दुर्भाग्य कि यह प्रयास भी असफल हो गया। कानपुर स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर योगेश के साथी उन्हें अपनी आँखों के सामने से निकलकर जाते हुए देखते रहे। उस समय उनके दुःख और निराशा की सीमा नहीं थी।

1937 में युक्त प्रांत के कांग्रेस का मंत्रिमंडल बनने के बाद, 24 अगस्त 1937 को काकोरी केस के सभी अभियुक्त रिहा कर दिये गये। 12 वर्ष बाद योगेश दा ने भी खुली हवा में साँस ली। लेकिन उन्हें तो संघर्ष रहित जीवन जीना ही नहीं था। 1937 में दिल्ली में राजनीतिक बंदियों के सम्मेलन का आंयोजन किया गया था। योगेश दा भी अपने साथियों के साथ दिल्ली पहुँचे। दिल्ली के कमिश्नर ने उन्हें छः घंटे के अंदर दिल्ली छोड़ने का आदेश दिया, जिसका उन्होंने पालन नहीं किया। निषेधाज्ञा का उल्लंघन कर उन सबने जुलूस में हिस्सा लिया; पकड़े गये, चार– चार महीने की सजा हुई। सजा पानेवालों में रामदुलारे त्रिवेदी, रामकृष्ण खत्री, शचीन्द्रनाथ बख्शी, रामशरण विद्यार्थी भी थे।

1937 में जेलमुक्त होने के बाद ही योगेश दा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में सम्मिलित हो गये थे। दो वर्ष बाद वे देवली कैम्प में नजरबंद कर लिये गये। वहाँ भी भूख हड़ताल की। पहले ही इतनी भूख हड़तालें कर चुके थे। अब शरीर साथ नहीं दे रहा था, अतः सरकार ने उनकी मृत्यु के भय से उन्हें रिहा कर दिया। 1942 का वर्ष 'भारत छोड़ो' आंदोलन का वर्ष था, जिसे 'अगस्त क्रांति' के नाम से भी जाना जाता है। इतना विशाल आंदोलन हो और योगेश दा उससे पृथक रहें–ऐसा नहीं हो सकता था। इस समय भी वे क्रांतिकारी युवकों को संगठित करते रहे, 'लखनऊ षड्यंत्र केस' में पकड़े गये। लखनऊ जेल में पुनः जेल–जीवन आरंभ हुआ। 1946 तक लखनऊ कारागार में रहे।

वे रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना करना चाहते थे। इस संबंध में उन्होंने 1938 में एक मीटिंग में भी भाग लिया था। लेकिन बार–बार गिरफ्तार किये जाने के कारण स्वयं इस दिशा में कुछ नहीं कर सके। आजादी के बाद योगेश दा कांग्रेस में शामिल हो गये। राज्यसभा के सदस्य भी मनोनीत हुए। अनेक वर्षों तक राज्यसभा के सदस्य रहे। रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी के आंतरिक मतभेदों के कारण उन्होंने कांग्रेस का हाथ पकड़ा था; यद्यपि वे कांग्रेस की नीतियों से न तो संतुष्ट थे और न ही सहमत थे। वे अक्सर अत्यधिक दुःखी होकर मित्रों के बीच रहा करते थे–''सारा देश जीवन–रहित है, पर कांग्रेस का कोई विकल्प न देखकर इसमें रहना पड़ता है।'' (सु.वि., वही पृ.50)

योगेश दा ने विवाह भी किया था। विवाह कब किया था, यह ज्ञात नहीं हो सका। विवाह जिस महिला से किया था, वो भगत सिंह युग के प्रसिद्ध शहीद भगवतीचरण वोहरा की प्रसिद्ध पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी थी, जो क्रांतिकारी संगठन में दुर्गा भाभी के नाम से मशहूर थी। क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास दुर्गा भाभी के अवदान को सदैव याद रखेगा। रामदुलारे त्रिवेदी (वही, पृ. 147) के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि यह विवाह आजादी पूर्व की घटना है। उन्होंने लिखा–''यह युगल जोड़ी हमारे युक्त प्रांत में पूरी शक्ति के साथ आजादी के युद्ध को सतेज करने के लिए लगन से काम करने में जुटी है।'' अनेक क्रांतिकारियों के संस्मरणों, लेखन एवं उनकी पुस्तकों से गुजरने के बाद भी कहीं इस विवाह के विषय में कोई चर्चा नहीं मिली। त्रिवेदीजी का कथन भी गलत नहीं हो सकता। विवाह अवश्य हुआ होगा, ''लेकिन वह असफल ही रहा।'' (सु.वि.वही, पृ. 49) वैसे भी विवाह किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है। इससे किसी क्रांतिकारी के जीवन चरित से कोई लेना–देना नहीं है।

सुधीर विद्यार्थी लिखते हैं कि जीवन के अंतिम वर्षों में उनका मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया था। सुधीरजी समझ नहीं पा रहे थे कि एक जुझारू क्रांतिकारी कैसे विक्षिप्त हो सकता है। फिर वे स्वयं ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शायद भौतिकता की ओर तेजी से भागनेवाला यह स्वार्थी समाज ही उन्हें विक्षिप्त समझने लगा, या फिर अपनी पूरी जिंदगी कष्टों, अभावों और यातनाओं में बिताते हुए वे सचमुच विक्षिप्त हो गये थे। (वही, पृ.50) वे क्रांतिकारी थे, लेकिन एक इन्सान भी थे। हर इन्सान की कुछ भावनात्मक जरूरतें होती हैं। कोई कब, कहाँ और कैसे टूट जाता है, बिखर जाता है, पता ही नहीं चलता।

'बंदी जीवन' में सान्याल ने योगेश दा की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है–''योगेश बाबू के आचरण से मैं कभी यह संदेह नहीं कर पाया कि वे मुझे किसी अन्य दल का नेता समझते थे और अपने को किसी दूसरे दल का अनुयायी।'' वे लिखते हैं–'' ...योगेश बाबू को यह प्रतीत हो रहा था कि उत्तर भारत में हमारा कार्यक्रम बंगाल के कार्यक्रम से अधिक उपयोगी था।'' (पृ. 339) वे बंगाल में जाकर अपने उद्योग से अर्थसंग्रह करके युक्त प्रांत में लाते थे। वो ऐसे थे योगेश दा, जिन्होंने 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' के जनक (सान्याल) को यह लिखने पर विवश कर दिया कि ''योगेश बाबू के मिलने पर मुझे यह संतोष हो गया कि अब मैं एक स्थान पर निश्चिन्त होकर

जम सकता हूँ और उस स्थान से बैठे–बैठे समस्त कांतिक्रारी आंदोलन का नियंत्रण कर सकता हूँ।''(पृ. 340)

क्रांतिकारी आंदोलन में योगेश दा के अवदान को सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं। सुधीर विद्यार्थी ने लिखा, 'तुम अपने रक्त से भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में जो कुछ अंकित कर गये, वह बहुत पवित्र और रोमांचकारी है।' (वही, पृ. 50) योगेश दा ने बहुत छोटी–सी उम्र से ही बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन में हलचल मचा दी थी। जब युक्त प्रांत में आये, तब उनके सफल नेतृत्व में क्रांतिकारी आंदोलन ने पुनर्जीवन प्राप्त किया था। वस्तुत: योगेश दा अपने साथियों के प्रिय थे। उनका स्वभाव ही ऐसा था कि हर कोई उनको अपना करीबी समझ बैठता था। स्वयं रामप्रसाद बिस्मिल और योगेश दा के बीच बहुत अच्छा तालमेल बन गया था। योगेश दा ने अंग्रेजी में दो पुस्तकें भी लिखी थीं–'इन सर्च ऑफ फ्रीडम' और 'इंडियन रिवोल्यूशनरीज इन कान्फ्रेंस'। 'इन सर्च ऑफ फ्रीडम' को पर्याप्त प्रशंसा प्राप्त हुई थी। 22 अप्रैल, 1969 में 74 वर्ष की आयु में योगेश दा के संघर्षरत एवं सक्रिय जीवन ने अंतिम साँसें लीं।

दरअसल

सुशांत सुप्रिय
गौड़ ग्रीन सिटी इंदिरापुरम, गाजियाबाद
मो. 8512070086

मुझे लगा था
मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ
बरसों से साथ रहते आए थे
हम दोनों

मैंने अपनी उँगलियों के पोरों से
उसके अंगों को जिया था
मैंने उसकी गुलाबी त्वचा को
अपने होंठों से छुआ था

पर मैं उसके ज़हन की लकड़ियों
के नीचे दबी सुलगती आग से
अनभिज्ञ था

एक दिन वह चली गयी
मेरी हिलती–थरथराती अलगनी को
सूना छोड़कर
तब मैंने जाना
कि दरअसल वह तो
किसी सुदूर आकाशगंगा से आता
कोई विरल संकेत मात्र थी

कि दरअसल वह तो
समय की गुफा में उकेरी गई
किसी प्रागैतिहासिक भित्तिचित्र की
अध–मिटी प्रस्तुति मात्र थी।

नहीं बता पाऊँगा

अचानक द्वार खुलेगा
और मैं भीतर प्रवेश कर जाऊँगा
स्वर्गीय हो चुके हैं सारे रिश्तेदार
स्वागत करेंगे वहाँ मेरा

कैसे हो बेटा, के जवाब में
नहीं बता पाऊँगा माँ–बाबूजी को
यहाँ तक पहुँचने की
अपनी दुर्गम यात्रा के बारे में

नहीं बता पाऊँगा उन्हें कि
ईश्वर के बारे में नीत्शे ने क्या कहा था
या यह कि वहाँ मर्त्यलोक में चारों ओर
खून की नदियाँ बह रही थीं।

संतोष कुमार राय 'साँच'
मंगरौना, गोनौली, मधुबनी
मो. 6204644978

नर से पशु की ओर

हम इतने बर्बर हो गये हैं कि
अपने शरीर को भी नोचकर खा जाना चाहते हैं
नर से पशु बनने की ओर हम चल पड़े हैं
डार्विन सूखे पेड़ पर बैठकर घूर रहा है हमें
अपने घर में आग लगाकर हम
चिल्ला रहे हैं–बचाओ, बचाओ
सो गये हम गहरी निद्रा में
नहीं तो मुजफ्फरपुर नहीं होता

छी..छी
संवेदनहीन नर
जड़बुद्धि घोर पापी आततायी नरकंकाल
तुम्हारी आत्मा मर गई क्या
रावण और कंस के वंशज
नारी पर ऐसा जुल्म
तुम्हारी दृष्टि क्यों नहीं फूटी
तुम्हारा मस्तक क्यों नहीं फटा

मोतिहारी और बिहिया कोई जगह नहीं है
नर के अंदर छिपा चोर है
जो बार–बार मुजफ्फरपुर हो जाता है
जनता बौनी हो गयी है
सत्तापक्ष–विपक्ष सब जोड़–तोड़ में लगे हैं
रोटी का हिसाब किया जा रहा है

जयप्रकाश सब देख रहे हैं
गांधीजी नि:शब्द हो गये हैं
नेताजी 'दिल्ली चलो' फीका पड़ गया है
कोई किसी का सुनता नहीं है
सब बुद्धिमान हो गये हैं
औरत को नंगा करके ईंट–पत्थर मारा जा रहा है

इस देश में दूसरा जयप्रकाश
पैदा लेगा जरूर
जो धधकती हुई ज्वाला को समेटकर
उस सत्ता के खिलाफ हवन करेगा
उस बर्बरता के खिलाफ शंख फूँकेगा
सत्ता के मद में बौराए दुर्योधन को
अंगुली पकड़कर सिंहासन से
उतारकर हिमालय भेजेगा।

लघुशोध

हिन्दी साहित्य में आंचलिकता और रेणु

डॉ0 वसीम राजा
हबीबपुर भागलपुर
8409908332

आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में आंचलिकता का महत्वपूर्ण स्थान है। आंचलिक रचनाओं में लेखक की दृष्टि आंचलिकता पर केन्द्रित होती है। इसमें क्षेत्र विशेष की संस्कृति का चित्रण होता है।

और वहाँ की बोली–भाषा में प्रयुक्त शब्दों का उपयोग किया जाता है। इसमें लोक संस्कृति, लोक जीवन, रहन–सहन, वेश–भूषा, अंधविश्वास, त्योहार–पर्व तथा राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का चित्रण विशेषरूप से होता है।

पाँचवें से छठे दशक में हिन्दी गद्य साहित्य का नया रूप सामने आया, जिसे आंचलिक उपन्यास कहा गया। उपन्यास को आंचलिक कहने तथा उसकी महत्ता की ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय सुप्रसिद्ध कथाकार उपन्यासकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' को जाता है।

जिन्होंने मैला आँचल 1954 उपन्यास में बिहार के ग्रामीण अंचल के रहन–सहन, रीति–रिवाज, राजनीतिक आस्थाओं आदि का चित्रण किया है। वैसे तो कथा साहित्य में आँचलिकता की स्थापना आचार्य शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' से हो चुकी थी।

आचार्य शिवपूजन सहायजी ने अपने आँचलिक उपन्यास 'देहाती दुनिया' की प्रस्तावना में कहा है–''मैं ऐसी ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुँधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती है–अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता तांडव नृत्य! वहीं पर मैंने स्वयं जो कुछ देखा–सुना है, उसे यथाशक्ति ज्यों का त्यों इसमें अंकित कर दिया। इसका एक शब्द भी मेरे दिमाग की खास उपज तथा मेरी मौलिक कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि भाषा का प्रवाह भी मैंने ठीक वैसा ही रखा है–जैसे ठेठ देहातियों के मुख से सुना है।''1

आंचलिकता के जरिये अंचल विशेष के सांस्कृतिक जीवन के सामाजिक पहलू पर प्रकाश डाला जाता है। आंचलिकता शब्द अंचल से बना है। अंचल का शाब्दिक अर्थ है जनपद या क्षेत्र। बृहद् प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार आंचलिकता का अर्थ है–किसी अंचल की विशिष्ट या विशिष्टताओं का समाहार एवं क्षेत्रीयता। ग्रामीण जीवन में जो वातावरण उद्घाटित होता है, उसे उसी रूप में प्रस्तुत करना आंचलिक कथाकारों की उपलब्धि है।

''गाँव के लोग बड़े सीधी देखते हैं, सीधे का अर्थ अगर अपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे से है। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारी और तुम्हारे जैसे लोगों का दिन में पाँच बार ठग लेंगे और तारीफ यह है कि तुम ठीक जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगे। यह मेरा सिर्फ सात दिन का अनुभव है। संभव है आगे चलकर मेरी धारणा गलत साबित हो, मिथिला और बंगाल के बीच का यह हिस्सा वास्तव में मनोहर है, औरतें साधारणतः सुंदर होती है। उनके स्वास्थ्य भी बुरे नहीं हैं।''2

हिन्दी कहानी की परंपरा में रेणु के विशिष्ट महत्व को हिन्दी कहानी के अधिकांश शीर्षस्थ कथाकार स्वीकारते हैं। डॉ. नामवर सिंह के बाद के आलोचकों में डॉ. शिवकुमार मिश्र का नाम महत्वपूर्ण है। वे अपनी प्रसिद्ध निबंध 'प्रेमचंद की परंपरा और फणीश्वरनाथ रेणु' में लिखा है–''रेणु हिन्दी के उन कथाकारों में है, जिन्होंने आधुनिकतावादी फैशन की परवाह न करते हुए कथा साहित्य को एक लम्बे अर्से के बाद प्रेमचंद की उस परंपरा से फिर जोड़ा, जो बीच में मध्यवर्गीय नागरिक जीवन की केंद्रीयता के कारण भारत की आत्मा से कट गयी थी हिन्दी साहित्य में उनका महत्व आज निर्विवाद घोषित है।

ऐसे में हम कह सकते हैं–''रेणु' ने अपने अंदाज में आजाद देश के गाँव का नया समाजशास्त्र रचा है, जिसमें गाँव एवं शहर का अलगाव नहीं है, बल्कि शहर गाँव में अपने पैर जमा चुका है।''3

फणीश्वरनाथ रेणु की लेखन शैली वर्णनात्मक है, जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया गया है। पात्रों का चरित्र निर्माण काफी तेजी से करते थे। क्योंकि पात्र एक सामान्य सरल मानव मन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। उनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। 'एक आदिम रात्रि की महक' इसका एक सुंदर उदाहरण है। इनकी लेखन शैली प्रेमचंद से काफी मिलती है और इन्हें आजादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है। अपनी कृतियों में उन्होंने आंचलिक पदों का बहुत प्रयोग किया है। अगर हम उनके क्षेत्र को देखते हैं तो पाते हैं कि कोशी आदि ऐसे शब्द हैं, जो निहायत ही ठेठ या देहाती है। इनकी रचनाओं में देहाती शब्द अधिक देखे जा सकते हैं–

काँचहिं बाँस के पिंजड़ा, जामें दियरो न बाती हो।
अरे हंसा उड़ल आकाश, कोई संगी ना साथी हो।।''4

'रेणु' का पहला प्रकाशित उपन्यास जिसने उन्हें रातोरात हिन्दी साहित्य जगत् में प्रतिष्ठित कर दिया 'मैला आँचल' है। सन् 1954 में मैला आँचल के प्रकाशन के साथ ही इस पहली कृति से उन्हें जैसी ख्याति प्राप्त हुई, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में अभूतपूर्व है; परन्तु इस उपन्यास के प्रकाशन के पूर्व भी रेणु काफी कुछ लिख चुके थे और एक लंबा संघर्षमय जीवन जी चुके थे। उनकी पहली कहानी 'बट बाबा' थी, जो सन् 1944 में विश्वमित्र मासिक पत्रिका कोलकाता में छपी थी, अगले वर्ष इसकी पत्रिका में उनकी दो और कहानियाँ 'रसूल मिस्त्री' और 'बीमारों की दुनिया' छपी थी। कहानियों के अलावा उनका रिपोर्ताज 'बिदापत', 'नाच' जिसमें उन्होंने उत्तरी बिहार में प्रसिद्ध इस नाच के ऊपर मनभावन चर्चा की थी। साप्ताहिक विश्वमित्र के 1 अगस्त, 1945 के अंक में प्रकाशित हुआ था। नये सबेरे की आशा तथा हड्डियों के पुल ये दो अन्य कथा रिपोर्ताज भी मैला आँचल के पूर्व 1950 ई. में क्रमशः मासिक जनवाणी वाराणसी के जनवरी तथा जनता के 17 सितम्बर अंक में प्रकाशित हुए थे। इसके अलावा भी कुछ अन्य रचनाएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि मैला आँचल 'रेणु' के रचना क्रम में वह कड़ी है, जिसने उन्हें साहित्य जगत् में व्यापक पहचान व प्रतिष्ठा दिलाई।

रेणु के लेखन में दृश्य किसी फिल्म की तरह आगे से गुजरते हैं, चरित्र की एक–एक रेखा जैसे खुलती जाती है। कोई नैना जोगिन हो या कोई लालपान की बेगम बिरजू की माँ, कोई निखट्टू कामगार पर गजब का कलाकार सिरचन हो या चिट्ठी घर–घर पहुँचानेवाला संवदिया हरगोविन्द या फिर इस्स कहकर सकुचाता हीरामण और अपनी नाच से बिजली गिराती हीराबाई या फिर पंचलाइट पेट्रोमैक्स के आने से खुश चौंधियाए और डरे हुए गाँव के भोले–भाले लोग हो, सबके बारे में यह बात कही जा सकती है।

''प्रख्यात समाजवादी चिंतक मस्तराम कपूर के शब्दो में 'रेणु' शब्दों की सार्थकता साबित करने के लिए जान की बाजी लगा देनेवाले लेखकों में थे।।''5

ऐसे बहुत कम लेखक होते हैं, जो अपने जीते जी ही किंवदन्तियों का हिस्सा हो जाते हैं। जो अपने समय के रचनाकारों के लिए प्रेरणा और जलन

दोनों का कारण एक साथ ही बनते हैं। 'रेणु' ऐसे ही थे।

सच्चिदानंद हीरानंद वातस्यायन अज्ञेय तो खैर उनके घनिष्ठ मित्र ठहरे। उनके द्वारा उन्हें धरती का धनी कथाकार कहा जाना उतनी बड़ी बात नहीं थी, लेकिन 'रेणु' की साहित्यिक धारा से बिल्कुल अलग लिखनेवालों को भी उनकी कलम की ताकत से इनकार नहीं था।

'रेणु' ने नई कहानी आंदोलन को खारिज किया था। इस आंदोलन को शुरू करनेवाले तिकड़ी में शामिल और नगरीय सभ्यता के मशहूर कहानीकार कमलेश्वर 'रेणु' के बारे में कहते हैं। बीसवीं सदी का यह संजय रूप रंग गंध नाद आकार और बिम्बों के माध्यम से महाभारत की सारी वास्तविकता सबको बयान करता है। निर्मल वर्मा 'रेणु' के समकालीन कथाकार रहे हैं। एकांत के एकालाप और निर्जन को अपने शब्दों में बहुत एहतियात से रचनेवाले इस लेखक ने रेणु के बारे में जो विचारे थे, वे भी कम चौकानेवाले नहीं हैं। मानवीय दृष्टि से सम्पन्न इस कथाकार ने बिहार के एक छोटे भूखंड की हथेली पर किसानों के नियति की रेखा को जैसे उजागर कर दिया था।

डॉ. चमनलाल के शब्दों में–''आंचलिक उपन्यासों को अन्य उपन्यासों से अलग करनेवाले पक्षों में एक पक्ष है–भाषा। कई बात तो केवल भाषा के आधार पर ही कई उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास मान लिया जाता है। यद्यपि भाषा आंचलिकता की अभिव्यक्ति का एक ही पक्ष है, लेकिन यह पक्ष ही काफी सबल पक्ष है।''6

'रेणु' नामक इस लेखक की आँधी में प्रांत और भाषा की दीवारें जैसे ढह पड़ी थी। 'रेणु' की लेखनी में यह प्रभाव यूँ ही नहीं आया था, इसके लिए उन्होंने लंबी साधना की थी और अथाह अध्ययन किया था, जो पढ़ा, उसे पचाया और गुना अपने भीतर फिर उसी से कुछ अद्‌भुत और दुर्लभ रचा। जब हम पढ़ी–सुनी चीजों को वैसे को वैसा ही रच जाते हैं, तो वह नकल होती है। जब हमारे सारे संचित को किसी खास परिदृश्य में रखकर सोचते हैं, उसे मिलाकर नया बनाते हैं, तो वह कुछ अलग सा होता है। गाँव वही थे। गाँववाले भी बहुत हद तक वही पर 'रेणु' के अनुभव यहाँ अपने थे। यहाँ अगर प्रेमचंद की रचनाओं में दिखनेवाला मोह भंग था, तो साथ ही विरासत को थामे रहने की उदासी में भी लोकधुनों और लोकगीतों को गुनगुनाने की राह खोजनेवाली जीवटता भी थी। रेणु लेखनी को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे प्रेमचंद के बनाये खाँकों में रेणु ने अपनी रचनाओं से रंग भरे हों–प्रेम, सद्‌भावना, सहभागिता के गाढ़े रंग। गोदान के बाद मैला आँचल ही वह दूसरा उपन्यास था, जिसने उसी तर्ज पर और उसी गति से चौतरफा तारीफ पायी थी। उन्होंने अपनी रचनाओं खासकर अपने उपन्यासों में उस जातिविहीन समाज का सपना भी देखा था। जिसे ना रच पाने का खामियाजा हम आजतक देख और भुगत रहे हैं।

अधिकतम विधाओं में कुछ न कुछ लिखनेवाले रेणु आत्मकथा नहीं लिख पाये। शायद इसलिए कि उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में खुद को पूरी तरह उड़ेल दिया था। हालाँकि इस बारे में उनमें न एक दुविधा थी, बल्कि वह अपने बारे में जब भी कुछ कहना चाहता था, जीबीएस जार्ज बर्नाड शॉ का चेहरा सामने आ जाता था। आँखों में व्यंग्य और दाढ़ी में मुस्कुराहट लिए और कलम रुक जाती। उस तरह कोई लिख ही नहीं सकता, संभव ही नहीं है वैसा लिखा जाना। वैसे यह दुविधा से भी ज्यादा सम्मान है किसी दूसरी भाषा के लेखक के लिए। उसके लिखे के लिए जो रेणु के कद को और भी बड़ा कर देता है। रेणु की कुल 26 पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों में संकलित रचनाओं के अलावा भी काफी रचनाएँ हैं, जो संकलित नहीं हो पायीं। कई अप्रकाशित आधी अधूरी रचनाएँ हैं। असंकलित पात्र पहली बार 'रेणु' रचनावाली में शामिल किये गये हैं।

अंत में मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्य में आँचलिकता के क्षेत्र में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपनी अलग पहचान बनायी एवं आँचलिकता को उच्च शिखर तक पहुँचाया। आनेवाली पीढ़ी इनकी रचनाओं से ग्रामीण जीवन को समझ सकेंगे।

संदर्भ–

1. आचार्य शिवपूजन सहाय, देहाती दुनिया, पृ. 8
2. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ. 59
3. परती पलार, कोशी माटी कथाकार विशेषांक, जनवरी–जून 2013, पृ. 50
4. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ. 50
5. साँवली, सितम्बर–दिसम्बर 2011, पृ. 51
6. डॉ. चमनलाल, मैला आँचल : भाषा और शिल्प, पृ. 3

फर्म–IV
समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा – 19 डी के अन्तर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (नियम 8) :–
1. प्रकाश का स्थान – भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड, गरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर–812001 (बिहार)
2. प्रकाशन की अवधि – त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम – बिरजू कुमारी, सलारपुरिया मार्केट, भागलपुर–812002
4. क्या भारत के नागरिक हैं – हाँ (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) – लागू नहीं ।
5. प्रकाशक का नाम – दयानन्द जायसवाल, मौर्या जुबली प्लेस, जीरो माईल, भागलपुर–813210 (बिहार)
6. संपादक का नाम – दयानन्द जायसवाल, मौर्या जुबली प्लेस, जीरो माईल, भागलपुर–813210 (बिहार)
7. क्या भारत के नागरिक हैं – हाँ (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) – लागू नहीं ।
8. उन व्यक्तियों के नाम/पता जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं/पता सहित–लागू नहीं।

प्राप्त आदेश संख्या – 1274481, दिनांक 03/07/2015, भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

हस्ताक्षर
दयानन्द जायसवाल
प्रकाश/संपादक

कहानी

बैधा

दिलीप कुमार सिंह
आनंदबाग
बलरामपुर (उ.प्र.)
मो. 9956919354

ये बहुत ही हैरतअंगेज खबर थी, जिसने भी सुना, वो सन्न रह गया। जिसने सुना वो उधर ही दौड़ा। गालिबन कुछ लोगों ने बेफिक्री से कंधे भी उचकाये, मगर कुछ लोगों को किसी अनहोनी का खटका भी हुआ। लोग बदहवास से उस तरफ दौड़े, जिधर से आवाजें आ रही थीं। औरतें, बच्चे वहाँ पहले से जमा थे, गाँव के बड़े–बूढ़े वहाँ तेज–तेज कदमों से चलते हुए पहुँचे। कुएँ के जगत के पास दोनों भाई गुत्थमगुत्था थे। उन दोनों लड़ाकों के शरीर नुचे हुए थे और खून से लथपथ थे, फिर भी वे गुत्थमगुत्था थे और एक दूसरे पर ताबड़तोड़ प्रहार किये जा रहे थे। बगल में पड़े तीसरे भाई वासुदेव की लाश पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं अर्थी का सारा सामान भी वहीं रखा था। बमुश्किल लोगों ने लड़ रहे दोनों भाइयों को अलग किया। दोनों लड़–लड़कर पस्त हो चुके थे। पूते की साँसें बहुत तेज चल रही थीं, ऐसा लगता था कि मानो वो अभी दम तोड़ देगा। पूते की पीड़ा का ये अंतहीन सिलसिला सालभर पहले से शुरू हुआ था, जब सालभर पहले भगतिन पंडिताइन को साँप ने डस लिया था, जो कि पूते की माँ थीं। भगतिन उसी दिन भगवान की प्यारी हो गयी थीं। पंडित बालकिशन भगत अनन्य शिवभक्त थे। शिव उनके कुल देवता और आराध्य देवता भी थे। दोनों जून शिव की स्तुति। खेती किसानी के अलावा वे दरवाजे पर स्थापित शिवलिंग को भी खासा समय देते थे। गाँव मील भर दूर ट्यूबबेल ऑपरेटर की नौकरी का भी वो अच्छे से निवाह कर रह थे। भगत पंडित दोनों जून शिवलिंग की पूजा करते। साँप, गोजर, गोह, नेवला सब शिवलिंग के इर्द–गिर्द मँड़राते रहते थे। शिव उनके आराध्य थे। शिव की बाराती सब जीव–जन्तु भगत को अपने ही लगते थे। फिर भी भगतिन को डसा था साँप ने। ये और बात थी कि उस अधमरे साँप को चील के पंजे से बचाया था भगत ने कई बरस पहले। सालों से वो साँप शिवलिंग के इर्द–गिर्द ही रहता था। अगर खौलते दूध की हाँड़ी न गिरती तो शायद साँप भगति को डसता भी नहीं। खपड़ा, पक्का, अटारी पर वो साँप लटकता रहता था।

किसी का पैर पड़ गया, तो भी उस साँप ने उसको न डसा। एक दिन भगतिन दूधहंडी का खौलता दूध चूल्हे से हटाकर ओसारे में रखने जा रही थी। अचानक उनको जोर से ठोकर लगी कि भगतिन हांडी के साथ भहराकर गिरी, उनका भी हाथ झुलस गया। मगर हांडी सहित भगतिन को अपने ऊपर गिरते देख साँप ने इसे अपने ऊपर हमला समझा। पलक झपकते ही खौलते दूध से साँप भी नहा गया। साँप की त्वचा जल गयी। क्रोध में साँप ने हाथ–पैर पटककर छटपटाती हुई भगतिन को लिपट–लिपटकर काटा, नोच–नोचकर काटा। भगतिन के प्राण पखेरू उड़ गये। भगतिन की मृत्यु से भगत पंडित बहुत आहत हुए। उन्हें इस बात का बहुत मलाल था कि उनके गुरुभाई सर्प ने उनकी पत्नी को डस लिया। भगत की मान्यता थी कि वे भी शिवभक्त और साँप भी शिवभक्त, तो इस हिसाब से वे और साँप गुरुभाई हुए। मृत्यु को तो उन्होंने विधि का विधान माना, मगर सर्प के दंश को गुरुभाई का विश्वासघात माना। भगत शिवस्तोत्र करते, सर्प को कोसते, उसके समक्ष धर्म और नीति पर ऐसे शास्त्रार्थ करते, मानो वो मनुष्य हो। जला, कटा, चमड़ी से उधड़ा हुआ सर्प वहीं पड़ा रहता। उसी चौखट पर सर्प को गाँव के लोगों ने काल कहकर मारना चाहा, मगर भगत ने शास्त्रार्थ करने के लिए जीवित रखने को कहा। 'अपने पाप मरैं अपकारी' की तर्ज पर उन्होंने सर्प को मारने के बजाय मरने देना उचित समझा। वे घायल, अधमरे सर्प से हमेशा कुछ न कुछ कहते रहते थे। सर्प, भगत की तरह ज्ञानी पंडित न था, जीव–जन्तु की अपनी दुनिया होती है। अपनी ही धुन के पक्के भगत द्वारा शास्त्रार्थ का जवाब न पाये जाने पर उन्होंने आजिज होकर सर्प को उठा लिया और उसके मुँह में हाथ डालकर विषधर से खुद को कटवा लिया। गालिबन उन्होंने खुद को डसवाया नहीं था, बल्कि अपने प्राणों का अंत करके उन्होंने अपने गुरुभाई को दोहरे पाप का दंश दिया था कि भगत–भगतिन की हत्या गुरुभाई के मत्थे। भगत को इतना क्रोध था कि उन्होंने अपने तीनों बेटों की भी चिंता न की, जो कि उनके बिना कहीं न कहीं आधे–अधूरे थे। उनका बड़ा बेटा मंगल एक नम्बर चरसी, गंजेड़ी और दारूबाज। जूता–चप्पल से लेकर धान–गेहूँ तक बेच डालता। किसी तरह भगत की कर्माही हो गयी। कमल ने ही सब कुछ किया। कमल वकालत के अंतिम वर्ष में था। कमल के बड़े भाई जलज की मृत्यु कुछ वर्ष पहले सर्पदंश से हो गयी थी। तब उसकी गोद में एक दूधमुँही बच्ची सोनी थी और उसकी भाभी का जीवन बेहद भयावह हो चला था। कमल उस बच्ची सोनी का पालन–पोषण करने लगा। कमल ने अपनी भाभी का दूसरा विवाह नदी पार करा दिया था। सोनी को ल्यूकोडर्मा (सफेदा) था, जिससे उसकी माँ के दूसरे पति ने उसे साथ ले जाने से इकार कर दिया था; क्योंकि सफेदा को वो कोढ़ और अपलक्ष्य मानता था। ये बात कमल के लिए तुरूप का इक्का साबित हुई। अपनी भाभी का विवाह करते समय उसने बड़ी चालाकी से उस अबोध बच्ची को गोदनामा अपने नाम लिखवा लिया था। इस मास्टर स्ट्रोक से उसने न सिर्फ अपनी भाभी को रास्ते से हटाया था, बल्कि कानूनन सोनी को अपनी बेटी बनाकर उसके हिस्से के जायदाद भी प्राप्त कर ली थी। अब कमल की नजर उसके अधिकारी भगत की संपत्ति पर थी। विधि के लेखों के आगे किसी चली है। समय ने ऐसी पलटी मारी कि दूध की एक हांडी की फिसलन से कुछ दिनों के अंतर पर भगत–भगतिन दोनों स्वर्ग सिधार गये। भगत के घर में रह गये बस तीन रंड–मुंड।

भगत के बड़े पुत्र मंगल की किडनी नशे के कारण लगभग खतम थी। चलते थे तो दम फूल जाता था और खाँसते तो लगता था कि जान निकल जाएगी। भगत के गुजरते ही उन तीनों अधपागल भाइयों ने अधमरे साँप को पीट–पीटकर मार डाला था। पूते उसे दफनाना चाहता था; क्योंकि कभी उसके माता–पिता का अनुराग उस सर्प पर रहा था। भले ही वो सर्प उन दोनों की मृत्यु का कारण रहा हो। एक महीने के ही भीतर दो–दो तेरहवीं और कर्माही देखी थी उस घर ने। भगत की नौकरी के अभी दो साल बाकी थे। अगर उन्होंने खुद सर्पदंश न करवाया होता तो आज वे जीवित होते और खुद अपने इन विशिष्ट बच्चों को पाल–पोस रहे होते। शिव के अनन्य भक्त भगत इतने शिवप्रेमी थे कि उन्होंने अपने बच्चे का नाम शिवकुमार, शिवप्रसाद और शिवप्रकाश रखे थे। शिवकुमार जो अल्लाम नशेड़ी था, उसने बमुश्किल आठवीं तक पढ़ाई की थी। गाँव–जँवार में उसे मंगल के नाम से भी जाना जाता था। दूसरा शिवप्रसाद जो कि पूते के नाम से जाना जाता था, वो बौना था और शारीरिक रूप से बेहद कमजोर। करीब साढ़े चार फूट का कद, चालीस किलो के आसपास वजन, छोटे–छोटे हाथ–पाँव, मगर पेट बहुत बड़ा था। बचपन से बहुत–सी असहाय बीमारियों को ढोता रहा था। नतीजन न उसके शरीर का विकास हुआ, न उसकी बुद्धि का। विद्यालय, भैंसवारा, खेलकूद–हर जगह उसके कमजोर शरीर का मजाक उड़ाया गया, तो उसने कहीं आना–जाना भी छोड़ दिया। बचपन से अक्सर वो अपनी माँ के ही आसपास रहा करता था। उन्हीं का हाथ बँटाता, चौका–बर्तन, नादा–सानी में उसके बहुत बरस ऐसे ही बीत गये थे। उसने गाँव

से बाहर अकेले शायद ही कभी कदम रखा हो, हमेशा माँ–बाप के संरक्षण में ही पला–बढ़ा। लोग उसे पूते या बढ़े हुए पेट के कारण पेटबली भी कहा करते थे। पूते अज्ञानी था, मगर बेवकूफ नहीं। तीसरे हजरात शिवप्रकाश उर्फ गोंजे, जो कि जन्म से पूर्ण विक्षिप्त था। हट्टा–कट्टा शरी, थाली भर भोजन और नदी नौखान में घंटों स्नान–यही उसका प्रिय शगल था। कड़कड़ाती माघ–पूस में जूता–चप्पल कभी न पहननेवाला गोंजे भूख का गुलाम था। उसे भूख सताती थी, तो वो पागल हो जाता था, ये और बात थी कि उसे भूख हमेशा सताती ही रहती थी। उसे भरपेट भोजन दो तो एवज में उससे कुछ भी करवा लो और इसी भरपेट भोजन पर नजर थी कमल की। भगत जब राम को प्यारे हुए तो फिर पूरी तासीर बदल गयी। कमल जानता था कि भगत के तीन एकड़ खेत में ज्यादा जरूरी था ट्यूबबेल ऑपरेटर की मृतक–आश्रित नौकरी, जिसका तनख्वाह तब पच्चीस हजार से ज्यादा थी। ये नोटबंदी के बाद के देश की हालात में काफी दिलफरेब रकम थी। तीन सालों की वकालत सात सालों में पास करनेवाला कमल अपने सगे भाई की सम्पत्ति तो हथिया ही चुका था। अब उसकी नजर उसके चाचा भगत की संपत्ति पर थी। भाभी का विवाह और भतीजी सोनी के गोदनामे के बाद अब उसके हाथ में उसके चाचा का केस था। कमल शायद नक्षत्र का बली था। भगत–भगतिन स्वर्गवासी हो चुके थे। गाँव कयासों और अंदेशों में उलझा हुआ था। अल्लाम नशेड़ी शिवकुमार की नौकरी की अर्जी की तैयारी की जा रही थी। कमल और उसकी पत्नी ही इन आधे–अधूरे भगतपुत्रों को खाना–पानी दे रहे थे। गाँव खत्म होते ही नदी का बांध था, बांध के बाद कछार और फिर गहरी नदी। गाँव में थोड़ी सी ही उपजाऊ जमीन थी, सो कोई जमीन से मिट्टी निकालने नहीं देता था। गाँव का इकलौता तालाब गाँव से एक मील की दूरी पर था, इसलिए लोग मिट्टी निकालने के लिए नदी के तट का ही प्रयोग किया करते थे। लेकिन नदी में आमतौर पर लोग नहाते–धोते नहीं थे, क्योंकि नदी में चंद्रफटा था और उस थोड़ी दूर तक नदी अथाह गहरी थी। शिवप्रसाद को नशे की लत बैठने नहीं देती थी। एक रात चुपके से उठकर उसने अनाज की डेहरी तोड़ दी और सारा अनाज बेच डाला। तीनों भाइयों में खूब गाली–गलौज, मारपीट हुई, जिसे अंत में कमल ने शांत कराया। मृतक आश्रित की नौकरी की फाइल इस दफ्तर से उस दफ्तर घूम रही थी। महज अब कुछ दिनों की देर थी नौकरी मिलने में। गाँव–गँवार में चर्चा थी कि ये नौकरी अगर पूते को मिल जाती तो ठीक था। तीनों भाई कम से कम जिंदा तो रहते; क्योंकि एक नशेड़ी था, तो दूसरा विक्षिप्त, तीसरा पूते कमजोर था, पर बुद्धि बहुत खराब नहीं थी उसकी। मगर गाँव क्या चाहता था और कमल क्या चाहता था, इस बात में बड़ा फर्क था। डेहरी टूटी थी, कमल ने शिवकुमार को मना लिया कि वो नदी से मिट्टी निकाल लाएगा, ताकि नई डेहरी बनायी जा सके। शिवकुमार तैयार हो गया, वो नदी से मिट्टी लाने गया। उसने किनारे से थोड़ी मिट्टी निकाली। अब ये नशे की पिनक थी या दैवीय संयोग कि उसने चंद्रफटेवाले स्थान पर मिट्टी की थाह लेने की सोची। प्रकृति की चुनौती स्वीकार करके उसने प्रकृति से पंजा लड़ाया। कुदरत अपने कमजोर बच्चों का लालन–पालन तो कर सकती है, मगर उनकी चोट नहीं सह सकती। शिवकुमार ने चंद्रफटे स्थान पर मिट्टी की टोह तो ले ली, मगर उस घूमते पानी से वो निकल न सका। लोगों के सामने हाथ–पैर पटकते हुए वह उस जलराशि में डूब मरा। मिट्टी निकालने गया था, मिट्टी में मिल गया जल–समाधि लेकर। लोग–बाग उसे डूबता छटपटाता देखते रहे, मगर चंद्रफटे स्थान पर दैवीय प्रकोप के डर से कोई उसे बचाने आगे न आया। घंटे भर बाद ही फूलकर शिवकुमार की लाश नदी के तट पर आ गयी। शिवकुमार की लाश पर ही गोंजे और पूते गुत्थमगुत्था होकर लड़ रहे थे। बड़े भाई की लाश पड़ी थी और दोनों छोटे भाई इस बात पर मारपीट कर रहे थे कि अब बप्पा की नौकरी कौन लेगा? खून–खच्चर हो चुके दोनों भाइयों को गाँव के लोगों ने बमुश्किल अलग किया। कमल ने दोनों को फटकारा, समझाया और घर के अंदर लिवा ले गया। समय आने पर ये कर्माही भी हो गयी। मृतक आश्रित की फाइल दफ्तर से वापस ले ली गयी थी; क्योंकि मृतक आश्रित का दावेदार भी अब मृतक हो चुका था। गाँव में दाव–पेंच अपने शबाब पर था। कोई भगतपुत्रों से खेत लिखवाने के फिराक में था, तो कोई इस फिराक में था कि दोनों भाइयों में से किसी एक को अपनी तरफ मिला लिया जाए कि आगे अगर उसको नौकरी मिल गयी तो उससे कुछ कर्जा–धर्जा लिया जा सके। दोनों भाई भी अपने–अपने मंसूबे पाल रहे थे। भविष्य में नौकरी, विवाह और न जाने क्या–क्या सपने थे उन आधे–अधूरों के। छोटी–सी कदकाठी वाले पूते के सपने काफी मजबूत थे। भगत के बड़े बेटे शिवकुमार का विवाह हुआ तो था, मगर उसकी बेऔलाद बीवी संतान पाने के नुस्खों की दवाइयाँ खाते–खाते मर गयी। भगत ने बहुत प्रयास किया, मगर उनके अल्लाम नशेड़ी बेटे का दूसरा विवाह न हो सका। पूते की शादी को एक दो बियाहु आये भी थे, मगर भगत पहले शिवकुमार का ही दूसरा विवाह करना चाहते थे; क्योंकि अवध के गाँवों में एक रिवाज है कि अगर छोटे भाई की शादी हो जाए, तो फिर बड़े भाई का विवाह नहीं होता। भगत इसीलिए पूते का विवाह टालते रहे थे; क्योंकि उनकी ये पीढ़ी तो चौपट थी। उनकी इच्छा थी कि शिवकुमार का भी विवाह किसी तरह कर ही देंगे। हालाँकि पूते का छोटा भाई पागल था, मगर पागल का भाई होने के नाते पूते को भी लोग बैधा (पागल) कहते थे। भगत इस सबसे अनजान न थे। एक बाप अपनी दो साल की बची नौकरी में अपने तीन आधे–अधूरे बच्चों को बसा देने का जी तोड़ प्रयास कर रहा था। मगर दूध की हांड़ी सर्प पर क्या उलटी, उस घर की दुनिया ही उलट–पुलट गयी। शिवकुमार की मृत्यु के बाद पूते अपनी नौकरी को स्वाभाविक और अपने विवाह को अवश्यंभावी मानकर चल रहा था। उसे अपने चचेरे भाई कमल पर बहुत विश्वास था। उधर कमल गाँव में मीन–मेख, न्याय–अन्याय की बातों से बहुत सशंकित था मिनटों में एक गलती से उसके समीकरण बिगड़ सकते थे। उसने एक युक्ति निकाली, गाँव के हस्तक्षेप से बचने के लिए वो दोनों भाइयों को फूला बहाने (अस्थि विसर्जन) के बहाने हरिद्वार ले गया। पूरे की संभावित नौकरी और विवाह की संभावनाएँ सामने थीं। उसने जाने से पहले बरदेखुआ लोगों से साफ कह दिया था कि मृत्यु के कारण एक साल तक घर छुतिहा (अशुभ) है, इसलिए इस वर्ष विवाह नहीं हो सकता। पूते भी इस बात पर राजी हो गया था। हरिद्वार से एक माह बाद जब वो लौटे तो गाँव धान की कटाई में मशगूल था। गाँव में पँवारा फसल की व्यस्तता के अनुसार ही होता है। कमल ने एक दिन उन दोनों भाइयों को हाजिर करके बीमा और बकाया बैंक बैलेंस निकाल लिया और उस पैसे को अपने खाते में जमा कर लिया। उसने भगत पुत्रों को समझाया कि इतना पैसा घर ले जाने पर रास्ते में बदमाश हमला कर सकते हैं और गाँव में चोर–डकैत भी आ सकते हैं। भगत पुत्रों ने अपने जान की अमान मानी और कमल के प्रति कृतज्ञ भी हो गये। गाँव शांत था और बड़ी शांति से पूते को पागल घोषित होने का चिकित्सीय प्रमाण पत्र बनवा दिया गया और गोंजे को मृतक आश्रित की नौकरी दिला दी गयी। शिवप्रसाद और शिवप्रकाश की पहचान से बचने के लिए शिवशुक्ला के नाम से मानसिक बीमारी का प्रमाण पत्र बनवा लिया कमल ने। प्रसाद और प्रकाश में ऐसा उलझा कि दोनों भाई शिव बनकर रह गये। इसी के बलबूते पर सचेत भाई पागल घोषित कर दिया गया और पागल भाई सचेत और तुर्रा ये है कि दोनों ही शिव शुक्ला और दोनों की वल्दियत भगत।

इस घटना को काफी वक्त बीत चुका है। पूते पंडित अब गाँव के लम्मरदार शुक्ल की गायें चराते हैं और वहीं खाते–पीते रहते हैं; क्योंकि गोंजे का सामना होते ही उन दोनों में मारपीट शुरू हो जाती है।

गोंजे कमल के ही घर रहता है, कभी–कभार नंगे पाँव नदी पार करे ड्यूटी पर चला जाता है, उसके हिस्से की नौकरी कमल ढो रहा है साहबों को कुछ दे–दिलाकर। गाँव के किसी चुहलबाज व्यक्ति ने कचहरी में दरख्वास्त दे दी है, तमाम महकमों से इस बात की दरयाफ्त होती रहती है कि दोनों भाइयों में बैधा कौन है?

कहानी

जिन्दगी – रेल की समानान्तर पटरी

मनोरंजन सहाय सक्सेना
ए 25 इन्द्रपुरी, लालकोठी
टोंकरोड जयपुर (राजस्थान)

इस छोटे–से रेलवे स्टेशन पर, जिसके दोनों सिरे पर स्थापित पत्थर की नाम–पट्टिकाओं को बारूद से उड़ा दिया गया लगता था और बाकी नाम पट्टिकाओं पर तारकोल पोतकर विकृत और अपठनीय बना दिया गया था, राजधानी एक्सप्रेस रुकने के बाद जब तीन घंटे बीत गये तो लंबी प्रतीक्षा से ऊबे हुए शेष चालीस पचास यात्री ट्रेन से उतरकर स्टेशन मास्टर पर लगभग चढ़ ही गये।

लंबी ड्यूटी की थकान से पस्त और कुछ हालात से डरे तथा अकेलेपन से ऊबे तथा एवं एक ही प्रश्न कि गाड़ी आगे के लिए कब रवाना होगी को बारंबार पूछे जाने से चिढ़े हुए स्टेशन मास्टर ने इस बार बड़ी तीखी आवाज में बताया कि उनसे चाहे जितनी बार यह प्रश्न पूछा जाये, उनके पास एक ही जवाब है कि इस स्टेशन से चार किलोमीटर आगे करीब एक किलोमीटर लंबी रेलवे लाइन को नक्सलवादियों ने विस्फोटक से उड़ा दिया है, इसलिए ट्रेक के मरम्मत हो जाने के बाद ही ट्रेन रवाना होगी।इसमें कितना समय लगेगा, इसकी कोई निश्चित अवधि तय नहीं है। मतलब साफ था कि अब वह इस बारे में दुबारा बात करने के लिए तैयार नहीं थे।

वैसे बोकारो से ट्रेन रवाना होने के कुछ समय बाद ही अति आधुनिक संचार सुविधाओं से सम्पन्न मोबाईल धारकों को आगे की यात्रा में आसन्न खतरों की सूचना शायद मिल चुकी थी, इसलिए अपनी सुविधा और सुरक्षा का ध्यान करते यात्रियों ने इस नानस्टाप सुपरफास्ट ट्रेन को तीन–चार बार चेन पुलिंग करके रोका था और भारी संख्या में लोग यात्रा स्थगित करके पलायन कर गये थे।

स्टेशन मास्टर का जवाब पाकर लंबी प्रतीक्षा से थके, ऊबे और नक्सलवादियों के नाम से भयभीत यात्री सुरक्षा के लिए संगठित होकर सलाह मशबरा कर रहे थे, तभी स्टेशन से बाहर चाय की थड़ी पर बैठे एक स्थानीय नेतानुमा व्यक्ति ने यह सलाह दी कि स्टेशन से पाँच–छः किलोमीटर दूर पर ही नेशनल हाइवे है। यात्री यहाँ उपलब्ध किसी भी वाहन से वहाँ पहुँचकर अपनी सुरक्षा और गंतव्य तक यात्रा का प्रबंध कर सकते हैं। इस व्यक्ति ने बड़ी सहृदयता का परिचय देते हुए स्टेशन के बाहर खड़े एक ट्रेक्टर ट्रॉली चालक (जिसे वह व्यक्ति अवश्य ही पहले से समझा करके लाया था) से लोगों को मिलवा भी दिया और आड़े समय में आदमी को आदमी के काम आना चाहिए के सदाचरण का पाठ पढ़ाते हुए सौ रुपये प्रति यात्री की दर से भाड़ा भी तय करवा दिया, तो आनन–फानन में लगभग यात्री ट्रॉली में आलू के बोरों की तरह लदकर रवाना हो गये और मैं तमाम व्यवस्था का लाभ लेने की सोचता तटस्थ दर्शक मात्र बना ही रह गया।

सभी यात्रियों के चले जाने पर अब कुछ अकेलेपन से त्रस्त और स्वयं के तुरंत निर्णय ना ले पाने की आदत की खिन्नता से मैं यूँ ही प्लेटफार्म पर घूमने लगा था, तभी ए.सी. कंपार्टमेंट से एक महिला यात्री उतरकर प्लेटफॉर्म पर आयी। तमाम सहयात्रियों के इस तरह पलायन से उत्पन्न एकदम जनशून्यता के कारण स्टेशन की भयोत्पादक हालत के कारण असुरक्षा की भावना से भयभीत होकर वह स्टेशन मास्टर के पास जा पहुँची, तो पहले से ही उद्विग्न स्टेशन मास्टर को लगा कि शायद मैंने उनसे कुछ सूचना या सुविधा प्राप्त करने के लिए अपनी पत्नी को भेजा है, इसलिए वह एकदम भड़क गये। महिला को कोई सूचना या जवाब देने के बजाय वह सीधे चलते हुए मेरे पास आये और बोले–'आप स्टेशन की हालात देख रहे हैं।यहाँ कोई रिटायरिंग रूम भी नहीं है और इनके साथ होते हुए भी आप नक्सली तोड़फोड़ के शिकार इस सुनसान छोटे–से स्टेशन पर इस भयानक रात को ठहरने के लिए रुके हुए हैं।

उनका स्वर एकदम तिक्त था।मगर मैंने विनम्रता से ही जवाब देना उचित समझते हुए कहा–'देखिये सर! पहली बात तो यह है कि अब कोई दूसरा विकल्प है ही नहीं और दूसरी बात है यह मैडम मेरे साथ नहीं है।' यह कहते हुए मैंने दोस्ताना बढ़ाने के लिए सिगरेट का पैकेट उनकी ओर बढ़ाया।मँहगा ब्रांड होने के नाते पहले तो वह थोड़ा सकुचाया, फिर सिगरेट ले ली।जेब से माचिस निकालकर पहले मेरी सिगरेट जलाई, फिर अपनी। एक गहराकश लेकर उन्होंने धुएँ को लेकर देर मुँह में बंद रखा, मानो आज की तमाम घटनाओं से पैदा आक्रोश का दम इस धुएँ में घोंट देंगे, मगर फिर शायद अपने इस प्रयास में असफल रहने के कारण पश्चाताप की एक गहरी निश्वास के साथ उसे नाक के रास्ते बाहर निकालते हुए बोले–'मेरी तो मजबूरी है यहाँ ड्यूटी पर किसी भी हालत में रुके रहने की–रिलीवर के नहीं आने तक। रिटायरमेंट में सिर्फ दो साल बाकी है। इसलिए अगर कोई चार्जसीट बगैरह मिल गयी, तो उसका जवाब देकर भी एकजोनेरेट होने में यह दो साल कम ही पड़ सकते हैं।

सर! तीन बच्चे हैं मेरे–दो लड़के और एक लड़की। दोनों लड़के पोस्ट ग्रेजुएशन करके बेकार बैठे हैं। छोटे–मोटे काम करके अपना जेबखर्च और नौकरियों के आवेदनपत्र और उनकी फीस का जुगाड़ करते हुए दोनों आक्रोशपूर्ण जीवन जी रहे हैं, मगर रोजाना नई–नई शर्तों पर बढ़ते आरक्षण से और उसके बाद बाकी बचे कोटे की सीटों के लिए पैसा, पहुँच और परिवारवाद के चलते हम सामन्यवर्ग के लोगों के बच्चों के लिए तो सरकारी नौकरी गूलर का फूल हो गयी है। इतनी पूँजी मेरे पास है नहीं कि उन्हें कोई खुद का काम करवा दूँ।लड़की ने भी पोस्ट ग्रेजुएशन कर लिया है।एक प्राइवेट स्कूल में मात्र तीन हजार रुपये महीने में दिनभर दो शिफ्टों में पढ़ाकर घर के संचालन में मदद करते हुए अपने हाथों में मेंहदी रचने के सपनों को बदरंग होते देखकर अन्यमनस्क–सी जिंदगी जी रही है। अभी तक पैसे के अभाव में परिवार के लिए कुछ नहीं कर सका। सोचता हूँ कि अगर ऐसे हालात में ड्यूटी करते हुए किसी नक्सली हमले बगैरह में मार दिया गया तो प्रोविडेंट फंड और ग्रेच्यूटी की रकम के साथ कुछ अनुग्रह राशि भी मिल ही जाएगी और एक लड़के को अनुकम्पा नियुक्ति के रूप में सरकारी नौकरी मिल जावेगी, तो परिवार सेटल्ड हो जाएगा। जीते जी तो परिवार के लिए कुछ कर नहीं पा रहा। कहते–कहते उनका स्वर एकदम भावुक हो गया तो उनकी भावुकता से विचलित मैंने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा–'देखिये सर! आज की जेनरेशन हमारे विचारों से ज्यादा एडवांस, जीनियस और केरियर अवेयर है। आप चिंता नहीं करें, सब ठीक हो जाएगा।

मेरे आश्वासन से वे शांत नहीं हुए और उसी स्वर में बोले–'आप जैसे पढ़े–लिखे विद्वान लोगों की आशावादिता से तो सब कुछ ठीक नहीं हो पाएगी। आप जानते हैं–नक्सलवादी रेलवे लाइन और स्टेशन बिल्डिंग उड़ाने की धमकी देते हैं। सरकार उनसे सख्ती से निपटने की बजाय गाड़ियों का मार्ग बदल देती है या रेलगाड़ियाँ रद्द कर दी जाती हैं।मगर गाड़ी आये न आये, हमें तो बारह घंटे या रिलीवर नहीं आने तक स्टेशन पर पूरी बर्दी में तैनात रहना है, जिससे नक्सलवादी हमें जल्दी से और अच्छी तरह पहचानकर सरकार के

प्रति उनका आक्रोश हम पर उतार सकें। इधर हमारी सुरक्षा का यह हाल है, उधर सुरक्षा बलों पर घात लगाकर हमला होता है और संसद में नक्सलवाद से निपटने के लिए सेना तैनात करने की बात राजनैतिक दलों के सदस्यों की आपसी बहस में उलझकर ठंढे बस्ते में पड़ जाती है। आखिर नक्सलवाद भी तो इन्हीं राजनैतिक नेताओं की देन है और इसी के भरोसे ही कई राजनैतिक दलों की रोजी–रोटी चल रही है। उन्हें तो घनी आबादी में जनप्रतिनिधि के तमगे साथ ए से लेकर जेड श्रेणी की सुरक्षा मिली रहती है, तो वो क्या जानेंगे कि असुरक्षा के भाव की यातना क्या होती है।'

उनका आक्रोश फूटता ही जा रहा था और प्रवाह पता नहीं कितनी देर चलता, मगर 'सा..ब' की आवाज सुनकर वह रुक गये। एक प्रौढ़–सा आदमी ने जो रेलवे स्टाफ का ही लगता था, गेट से अंदर प्रवेश किया और स्टेशन मास्टर से बोला–'सा..ब! हाइवे पर चार ट्रक गारद (गार्ड) आ गयी है और तीस गारद के जुआन (जवान) और एक अफसर को स्टेशन पर गाड़ी की रच्छा (रक्षा) का हुकुम हम अपने कान से सुनकर आय रहे हैं, सो जल्दी से गारद पहुँच जावेगी।'

'अच्छा ठीक है'–कहकर स्टेशन मास्टर मेरी ओर मुखातिब हुए फिर बोले–'देखिये, हमारी जनकल्याणकारी सरकार ने राजधानी एक्सप्रेस जैसी गाड़ी और उसमें सवार करीब आठ सौ यात्रियों की सुरक्षा के लिए अत्याधुनिक हथियारों से लेस नक्सलवादियों के मुकाबले के लिए इन तीस मामूली रायफलधारियों को बलि का बकार बनाकर सिक्यूरिटी का इंतजाम का तमाशा कर दिया, मगर अब मेरी आपको एक सलाह है–आप अपने कंपार्टमेंट में चले जायें और अंदर ही रहें। इस काफी साफ रोशनीवाली चाँदनी रात में कंपार्टमेंट के अंदर रोशनी और आवाज पैदा करनेवाली हरकत बिल्कुल नहीं करें, बेहतर होगा कि आप दोनों एक ही कंपार्टमेंट में रहें। कहकर उन्होंने मेरी तरफ देखा तो मैंने एक सिगरेट स्वयं निकालकर सिगरेट केस दुबारा उनकी तरफ बढ़ाया, मगर इस बार उन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया और बोले–'गाड़ी सुबह से पहले रवाना होगी नहीं और आपका ब्रांड यहाँ मिलेगा नहीं, कहकर वह चलने को मुड़े, तो मैंने कहा–'सर! मैडम को जो कहना हो, आप ही कह दें, तो अच्छा रहेगा।'

स्टेशन मास्टर कुछ बोलते इसके पहले ही महिला बोल पड़ी–'इसकी जरूरत नहीं है, मैं तो आपके इसी ए.सी. कंपार्टमेंट में ही हूँ। मेरी सीट दरवाजे के पास विंडो लोअर है।'

आपकी मर्जी, कहकर मैंने पहली बार उनकी ओर गौर से देख। वह लगभग मेरी ही समवयस्क एक आकर्षक कदकाठी की महिला थी। उनका सुनहरे फ्रेम का चश्मा उनके चेहरे को एक गंभीरतापूर्ण गरिमा प्रदान कर रहा था।

मैंने हाथ में पकड़ी सिगरेट जला ली और पास पड़ी एक सिमेंट की बेंच पर बैठकर कश लगाया तो महिला ने मुझे अपनी नाक सिकोड़कर शायद सिगरेट के प्रति अपनी नापसंदगी जाहिर की, मगर मैंने उनकी प्रतिक्रिया को दरकिनार कर दिया; क्योंकि समझदार सभ्य लोगों की तरह मुझे भी पता है कि सिगरेट में सिर्फ बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं, फिर भी मेरा अपना एक मजबूर ख्याल यह है कि उन तमाम स्वास्थ्यनाशक बुराइयों के बावजूद अकेलेपन के संताप के समय में आपको एक दोस्ताना राहत देती है।

थोड़ी देर तो एक सभ्य महिला की तरह सार्वजनिक स्थान पर धूम्रपान पर अपना विरोध और अन्जान व्यक्ति से दूरी बनाये रखने का भाव प्रकट करने के लिए बैंच के दूसरे सिरे के पास खड़ी रही, फिर सकुचाती हुई सी वहीं बैठ गयी। इसके कुछ समय बाद शरदऋतु के आकाश में पूनम के काफी ऊपर चढ़ आये चाँद से वातावरण में जब ठंढ बढ़ने लगी तो वह बोली–ठंढ काफी हो गयी है, कंपार्टमेंट में चलें, तो ठीक रहेगा।

चलिये, कहकर मैं भी उठ खड़ा हुआ। कंपार्टमेंट के बाहर शरदऋतु की मादक ठंढ होने के बावजूद अंदर एक अजीब सी घुटन थी। जेनरेटर बंद हो जाने की वजह से ए.सी. चल नहीं रही थी। मगर अब तो इसी कंपार्टमेंट में अंदर रहकर पूरी रात काटने की मजबूरी थी।

थोड़ी देर हम दोनों एक ही सीट के किनारों पर बिल्कुल खामोश बैठे रहे, फिर मैंने ही मौन भंग किया–'देखिये, इस मजबूरी में आपस में विश्वास करने से ही काम चलेगा। मेरे कहने को आप अन्यथा नहीं लें और आपकी तरफ के दोनों दरवाजे अंदर की चिटखनी लगाकर बंद कर लें और खिड़कियों के पर्दे पूरी तरह खींच लें। अगर कोई खटखटाये तो दरवाजा खोले नहीं, उस वक्त इधर मेरे पास आ जायें, जो होगा उसका मिलकर मुकाबला करेंगे और अपने होते हुए तो मैं आपको किसी को हाथ भी नहीं लगाने दूँगा।'

मेरी बात से शायद उन्हें सुरक्षा का आश्वासन मिल गया, इसलिए एक बहुत छोटी सी मुस्कान के साथ बड़े सहज स्वर में बोली–मैं अभी इधर, आपके पास ही शिफ्ट कर लेती हूँ और अपना सामान उठाने चली गयी। जब उन्होंने अपना सामान सँभालकर रख लिया तो अपने मोबाईल की रोशनी में एक बेग में से टटोलकर बिस्कुट और नमकीन का पैकेट निकाला, फिर महिला सुलभ कौशल से खाने का सामान एक अखबार के टुकड़े पर सजाकर बोली–'आइये, डिनर कर लेते हैं।'

मैंने दो–तीन बिस्कुट उठाकर उन्हें धन्यवाद दिया और खिड़की के पास अपनी बर्थ पर आ गया। बिस्किट खाते–खाते वह बोली–'ए.सी. नहीं चल रही है, इसलिए कितनी घुटन है और अगर ऐसे में आप...वाक्य अधूरा ही छोड़कर, मेरी ओर देखकर चुप वह हो गयी, तो मैं उनके आशय को समझ गया। मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा–मैडम! सोने के दौरान तो कोई भी सिगरेट नहीं पीता और अगर आपको तकलीफ होगी तो मैं अब कंपार्टमेंट के अंदर सिगरेट नहीं पीऊँगा।

थैंक्स, कहकर उन्होंने अपने कपड़े सँभाले और मेरी सिर करके सीट पर लेट गयी। वातावरण बोझिल था। मगर गाड़ी रुके रहने की खीझ और विवशता के संताप की मानसिक थकान से नींद लग ही गयी।

पता नहीं कितनी देर सोया। दरवाजा खटखटाने की आवाज से नींद टूटी, तो मैं किसी अज्ञात आशंका से त्रस्त हो उठा। वह भी उठकर बैठ गयी थी और एकदम भयभीत लग रही थी। मैंने उन्हें उनकी सीट पर चुपचाप बैठे रहने का संकेत किया और धड़कते दिल से दरवाजा खोला तो स्टेशन मास्टर को देखकर बड़ी राहत मिली। सुप्रभात अभिवादन की औपचारिकता के बाद वह बोले–इन हालात में रात को आप लोगों को नींद तो क्या आई होगी, मगर काली रात के बाद अब सवेरा हो गया है और स्टेशन के बाहर थड़ीवाला चाय बना रहा है। आपलोग चाय पी लें। अब मैंने आश्वस्त होकर देखा। सुबह के सात बज रहे थे और बाहर शरद की कोमल धूप फैल रही थी।

मैं नीचे उतरा और दो चाय लेकर लौटा। एक चाय उनकी ओर बढ़ायी। चाय लेते समय एकाएक उनकी कमर के पास एक काला–सा निशान दिखाई दे गया, जिसे उन्होंने बड़ी सफाई और तेजी से अपना आँचल खोंसकर छिपा लिया, मगर उनका कमर का यह काला निशान मेरे दिमाग में बिजली की तरह कौंध गया और मेरे मुँह से एकदम निकल गया–'आप कानपुर को बिलोंग करती है क्या?'

मेरा प्रश्न सुनकर वह एकदम सकपका सी गई, उनके चेहरे पर कई भाव आये और गये तो मैं कुछ लज्जित और खिन्न हो गया। मैंने क्षमा याचना करते हुए कहा–'माफ कीजिएगा, बस यूँ ही पूछ लिया था, आप माइंड

न करें।' अपना स्पष्टीकरण करते हुए मुझे लगा कि वह मुझे घूर रही है, मगर मेरी बात खत्म होते ही वह हर्षपूर्ण दृढ़ स्वर में बोली–'और आप धामपुर से हैं। अरे! आप तो धामपुर वाले रंजीत जी हैं, हैं ना?' और आप सुप्रियाजी हैं, हैं ना?मैंने आश्वस्त स्वर में कहा।

हाँ, मैं वही अभागी सुप्रिया हूँ।यादों के समंदर में डूबी हुई सी आवाज में कहकर वह एकदम मौन हो गयी।उनकी स्वीकृति के बाद एक शालीन मौन पसर गया हमारे बीच में, हम दोनों ही तीन दशक पुरानी यादों में खोने लगे थे।

यह तब की बात है, जब विवाह एक दिन का आपाधापी का सेलिब्रेशन नहीं, बल्कि एक परंपरागत पारिवारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक उत्सव होता था।शादी के पाँच सप्ताह पहले किसी शुभ दिन के शुभ समय पर घर की सबसे वरिष्ठ सुहागिन महिला घी में हाथ डुबोकर घर के पूजागृह में दीवार पर छाप लगाती थी, इसे सीधा करना कहते थे।इसे आज की भाषा में वैवाहिक कार्यक्रमों का उद्घाटन माना जा सकता है, क्योंकि इसके बाद ही उस विराट पारिवारिक उत्सव–विवाह के लिए तैयारियों के काम शुरू होते थे और पारिवारिक संबंधियों का आना भी।क्विंटलों गेहूँ साफ किये जाते थे, अचार बनाये जाते थे; क्योंकि तब वुफे सिस्टम नहीं होता था।बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए संबंधियों, समाज के लोगों को कम से कम दस–बारह दिन का और सैकड़ों की संख्या में आये बारातियों को कम से कम छः समय का नाश्ता और खाने का प्रबंध कोई हँसी खेल नहीं होता था।यह सब काम घर–परिवार और समाज के लोग मिलकर करवा लेते थे।घर के युवा लड़कों को उनकी योग्यता के अनुसार काम सौंप दिये जाते थे।

परिवार में ऐसे ही एक विवाहोत्सव में इस कहानी का मेरे जीवन के पहले एकमात्र प्यार का अंकुरण हुआ था।हमारे चाचा, जिनके पुत्र का विवाह था, एक रिटायर्ड चिकित्साकर्मी थे।उन्होंने राजकीय सेवा की लंबी अवधि में सरकारी वस्तुओं और सुविधाओं का भरपूर सदुपयोग करके कुछ भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रयोग किये और आयुर्वेदिक औषधीय जड़ी–बूटियों का एलोपैथिक रसायनों बगैरह में मिश्रण करके कुछ बीमारियों का इलाज करने में काफी सफलता पायी थी, इसलिए हमारे परिवार में ऐसे कुछ अवसरों पर कुछ मेहमान शादी में सम्मिलित होने के बहाने परिवार के सदस्य का विशेषकर महिला या पुत्री के कुछ ऐसे रोगों (जिनकी आम चर्चा नहीं हो सकती थी) का इलाज कराने के लिए सीधा हाथ हाते ही आने लगते थे।मेरे समवयस्कों की कुटिल एकता से अबकी बार मुझे आगन्तुकों को रेलवे स्टेशन या बस स्टैंड से लिवाकर लाने का काम सौंपा गया।

सीधे हाथ के दूसरे दिन ही मुझे रात दस बजे आनेवाली गाड़ी से चाचाजी की बड़ी पुत्री की किसी बुआ सास का लिवाकर लाना था।स्टेशन मारे घर से चार–पाँच किलोमीटर दूर था और वह एक्सप्रेस ट्रेन यहाँ केवल दो मिनट रुकती थी।मैं गाड़ी के साथ ही स्टेशन में दाखिल हुआ था, मगर एक तो उनके साथ बड़ी मात्रा में सामान और युवापुत्री की सुरक्षा की दृष्टि से वह कुली और मेरे बार–बार कहने पर भी तब उतरी, जब गाड़ी रेंगने लगी थी।मेरा हाथ पकड़ने से इन्कार करते हुए वह चलती ट्रेन से उतरते हुए औंधे मुँह गिर गई, जिससे उनकी भारी कमर में अच्छी खासी चोट और पैर में मोच आ गयी। इसपर उन्होंने घर में पहुँचकर ऐसा कोहराम मचाया, मानो मैंने उन्हें धक्का देकर गिराया हो।

मुझसे कैफियत तलब हो जाने के बाद भी मुझे डाँट पड़ी नहीं।नहीं पड़ने के दर्द से विकल वह मानो विलाप करती हुई हमारे चाचाजी से बोली–'भाई साहब! हमारी इस कमबख्त बेअकल लौंडिया (लड़की) के कमरबंद कसकर बाँधने से इसकी कमर के पास एक हल्का–सा दाग पड़ गया है।आपकी बिटिया हमारी भांजी की शादी में कानपुर आई थी, तब उन्होंने ही इसे आपको दिखाने के लिए कहा था, सो मैं तो सीधा हाथ होते ही चली आई। पर इस कलमुंही (उनकी युवापुत्री) का तो भाग ही खराब है, अब इसका इलाज कैसे होगा?' कहकर वह सिसकने लगी, तो खुद अपनी माँ के अलंकरणों से मेरी मौजूदगी के कारण उनकी पुत्री की आँखें शर्म से झुक गयीं, मगर चेहरा अव्यक्त आक्रोश से तमतमा गया।

हमारे अनुभवी चाचाजी ने बेटी की आहत मनःस्थिति को तुरंत भाँप लिया, इसलिए बड़े सधे लहजे में बोले–'बहनजी! बिटिया का इलाज तो मुझे करना है, आपको तो बस घर पर रहकर आराम करना है और आप भी दो–चार दिन में बिल्कुल ठीक हो जाओगी।बच्ची को भला–बुरा मत कहिये।मेहमानों का घर है।मैं कल से ही बिटिया का इलाज शुरू कर दूँगा।' फिर वह उनकी पुत्री की तरह मुखातिब होकर बोले–'बिटिया! तुम सुबह नौ बजे तैयार हो जाना रंजीत तुम्हें क्लिनिक पर पहुँचा देगा।नाश्ता अच्छी तरह करके आना; क्योंकि शुरू में पंद्रह दिन दवा लगाकर तीन घंटे क्लिनिक में बैठना पड़ेगा।

चाचाजी की बात सुनकर वह एकदम विफर गई और बोली–भाई साहब! इलाज करना है, तो घर ही करो।सप्पी (उनकी युवापुत्री का घरेलू नाम) क्लिनिक पर तीन घंटे तो नहीं बैठी रहेगी।

'बहनजी! इलाज तो इलाज के तरीके से ही होगा।घर पर सारा क्लिनिक तो नहीं जुटाया जा सकता न।रंजीत कल सुबह इसके क्लिनिक पहुँचा देगा और लौटाकर ले आएगा।' चाचाजी ने बात का समापन करते हुए कहा।

'नहीं भाई साहब! आप घर की किसी लड़की को साथ कर दें।' वह आदेशात्मक स्वर में बोली, तो चाचाजी ने अति विनम्रता के साथ उन्हें समझाया कि घर की तीनों युवा लड़कियाँ कॉलेज जाती हैं, उनकी परीक्षा निकट होने की वजह से वह तो विवाह के मुख्य तीन–चार दिनों में ही कॉलेज की छुट्टी करेगी और रंजीत मेरे अपने लड़के से ज्यादा विश्वास का है उनके घर में, इसलिए वह बिल्कुल चिंता न करें।'

मगर भाई साहब! सप्पी रोज–रोज इतनी देर के लिए आपकी क्लिनिक पर जाएगी, तब भी तो लोग खास तौर पर लुगाइयों की चर्चा करेंगी तो...उन्होंने अपनी बात मनवाने के लिए कूटनीतिक चाल चली।

चाचाजी को उनसे बात करते हुए शायद इस प्रश्न का पूर्वाभास हो गया और उन्होंने उसका हल भी सोच लिया था, इसलिए एक दो मिनट सोचने का दिखावा करते हुए बोले–आप कह देना कि बिटिया ने होमसाइन्स सब्जेक्ट ले रखा है, उसमें किसी आकस्मिक दुर्घटना के समय घर पर रोगी क्या और कैसे उपचार दिया जाता है, इसको सीखने–समझने क्लिनिक पर जाती है। अब तो ठीक है।चाचाजी ने उनकी हठपूर्ण शंका का निवारण करते हुए कहा।

'मगर भाई साहब! आप सप्पी के पापा को नहीं जानते, वह बहुत नाराज होंगे, जब उन्हें पता चलेगा कि सप्पी कॉलेज में पढ़नेवाले एक जवान लड़के के साथ अकेली क्लिनिक जाती थी।अब वह कुछ संकोच से बोली, तो चाचाजी ने अपने व्यावसायिक अनुभव में सामाजिक प्रतिष्ठा के मिश्रण का नुस्खा आजमाते हुए कहा–बहिनजी! पहली बात तो यह है कि उन्हें बताएगा कौन, फिर सबसे बड़ी बात यह है कि अब तो रोज ही मेहमान बढ़ेंगे, तब बिटिया की नादानी से ही पड़े सफेद दाग के इलाज की बात छिपी कैसे रह सकेगी। चाचाजी के बेहद गंभीरता से बोले गये शब्दों में छिपी आशंका में छिपे सत्य के भय से वह चुप हो गयी।

सुप्रिया के इलाज के लिए क्लिनिक जाने के पहले दो तीन दिन तो हम रिक्शे में बिल्कुल अजनबी की तरह बैठे रहे थे।कस्वाई सड़क के गड्ढों की वजह से जब हिचकोले लगते तो मैं सौजन्यता के नाते भरसक कोशिश करता कि मेरा शरीर उनके शरीर से टकराये नहीं, मगर कभी–कभी ऐसा हो ही जाता

था। ऐसी ही एक कोशिश में उस दिन मैंने आगे झुकते हुए रिक्शे की सीट पकड़ने की कोशिश की, तो पुरानी सीट में निकले लोहे के किसी टुकड़े से मेरी अंगुली कट गयी। खून बह निकला तो सुप्रिया एकदम घबरा गयी। घबराहट में उन्होंने एकाएक मेरा हाथ पकड़कर अंगुली को अपने होंठों में दबा लिया। मुझे तो जैसे बिजली का झटका–सा लगा, मगर जो अनंत आनंद की अनुभूति हुई, वह तो वर्णनातीत है। थोड़ी देर में खून बहना बंद हो गया तो वह लज्जित सी होकर बड़े संकोच से बोली थी–'मेरी वजह से आपको कितनी तकलीफ हो गयी।'

अरे, इसमें तकलीफ क्या है, ये छोटी–मोटी चोटें तो लगती ही रहती हैं, आप बिल्कुल परेशान नहीं हों। मैंने उन्हें आश्वस्त करने के लिए थोड़ा बहादुरी दिखाते हुए कहा। उन्हें मेरी बात से कितनी तसल्ली हुई, पता नहीं। मगर उस दिन के बाद रिक्शे में लगनेवाले हिचकोलों पर अपने शरीर एक दूसरे से टकराने का बचाव का प्रयास उन्होंने लगभग छोड़ दिया था, बल्कि ऐसे अवसर पर जब वह नजर नीची करके हल्के से मुस्करा देती थी, तो मुझे रोमांचक आनंद का अनुभव होता था। इसके बाद हम धीरे–धीरे आपस में खुलने लगे अपने कॉलेज, केरीक्यूलम बगैरह बहुत से विषयों और परिवार के बारे में बात करने लगे। ऐसे ही बात करते–करते एक दिन अचानक वह मेरे पिताजी के बारे में पूछ बैठी–आपकी माताजी से कई बार मिल चुकी हूँ, मगर आपके पिताजी को नहीं देखा, वह यहाँ हैं क्या?

पिता की मृत्यु को दस वर्ष हो गये थे, मगर घर से रवाना होने के थोड़ी ही देर पहले उनकी किसी प्रसंग में हुई चर्चा और अब उनके अचानक प्रश्न से पिता की स्मृति में मैं भावुक हो गया, तो पता नहीं, उन्होंने मुझे सान्त्वना देने के लिए या अपनी शर्मिन्दगी छिपाने के लिए या भावुकता के आवेश में मेरा हाथ अपना हाथ में थाम लिया और विनयपूर्ण स्वर में बोली–'देखिये, मैं सच कह रही हूँ, मुझे बिल्कुल मालूम नहीं था कि मेरे इस प्रश्न से आपको दुःख होगा। आप मुझे माफ कर दीजिए। (प्लीज कहने का उन दिनों फैशन आम नहीं था) कहते हुए वह लगातार मेरा हाथ पकड़े रही तो मुझे ऐसा लगा था मानो पिताश्री ने स्वर्ग में बैठे हुए विगत दस वर्षों के स्नेह का कोटा आज इस पल में ही मुझ पर लुटा दिया हो।

उस दिन के बाद मैंने कॉलेज जाना बंद ही कर दिया। सुप्रिया का अधिक से अधिक सामीप्य पाने के लिए मैं घर के ज्यादे से ज्यादा काम करने लगा और उनकी माँ का तो ज्यादे से ज्यादा काम पूरी तत्परता से करने लगा था।

इधर हमारी नजदीकियाँ बढ़ रही थीं, उधर विवाह के दिन नजदीक आ रहे थे और आखिर वह दिन भी आ गया, जब उनके पिताश्री अपने दो पुत्री के साथ पधार गये।

उस कद्दू के आकार के श्याम वर्ण मुँह पर कर्जन कट मूँछों और बड़ी–बड़ी खूँखार आँखोंवाले व्यक्ति ने चाचाजी की बड़ी पुत्री के फूफिया ससुर होने के नाते उन्होंने आते ही उनके भारी भरकम स्वागत से लेकर हर बात में फूँ फाँ करने के दायित्व से निवृत्त होते ही सबसे पहले अपनी पत्नी को तलब किया और किसी आपराधिक मामले के बेहद कठोर जाँच अधिकारी के अंदाज में सुप्रिया के इलाज के बारे में पूछा और यह पता लगते ही कि उनकी पुत्री पूरे एक माह कॉलेज में पढ़नेवाले एक जवान लड़के के साथ घर से चाचाजी की क्लिनिक तक अकेली जाती आती रही, तो उन्होंने घर के वातावरण की परवाह न करते हुए अपनी पत्नी को बेहद बदतमीजी से डाँट दिया।

मेरी बदकिस्मती कि मैं उसी समय वहाँ पहुँच गया था, सो पत्नी से फुरसत पाते ही उन्होंने मुझे लपक लिया और बिना किसी भूमिका या लाग लपेट के मेरा हाथ पुलिसिया अंदाज में पकड़कर बोले–'देखो मियाँ, अगर तुमने पिछले एक महीने में हमारे बेवकूफ लौंडिया के साथ कोई ऐसी–वैसी हरकत की होगी, तो मुझे पता चल ही जाएगा, फिर तुम्हारी खैर नहीं है। तुम मुझे नहीं जानते, कानपुर में पूरा मुहल्ला मुझसे काँपता है, समझ गये ना और इसके साथ ही सुप्रिया को खा जानेवाली नजरों से देखते हुए गरजे–खबरदार, जो अब क्लिनिक पर जाने का ख्याल भी दिमाग में लायी और इस लौंडे से मिलने की कोशिश की तो...

इस आदेश से मुझपर तो बज्रपात ही हो गया। अब सुप्रिया से मिलने की संभावना तो एकदम खत्म ही हो गयी। फिर भी तमाम आवश्यक या उनकी झलक पा जाने की आस में सोचकर निकाले गये कामों की वजह से आते–जाते कभी वह दिखाई दे भी जातीं तो उनका उदास और बुझा हुआ चेहरा देखकर मन को बेहद तकलीफ होती थी।

सुप्रिया से मिलने का कोई अवसर न देखकर मैंने एक योजना बनायी। मैंने कॉलेज में यूनिवर्सिटी हॉकी टूर्नामेंट्स में जानेवाली टीम के चयन का ट्रायल शुरू हो जाने का बहाना बनाकर चाचाजी के घर जाना–आना बेहद सीमित कर दिया। यह मेरी योजना का एक भाग था। इस बहाने से मैं बारात में जाने से मना कर सकूँगा और सुप्रिया के पिता का भारी मनुहार के साथ बारात में ले जाया जाना निश्चित था। उन दिनों विवाह की रस्में आराम के साथ तीन दिन में पूरी होती थीं, इसलिए बारात जाने और वापिस आने में चार–पाँच दिन की अवधि तो निश्चित ही होती थी। उन दिनों मैं कभी न कभी सुप्रिया से मिलने का मौका, मिलने की संभावना थी और सौभाग्य से यह संभावना बन गयी।

बारात चले जाने के बाद घर में पुरुष तो एक दो ही और स्त्रियाँ ही शेष रह जाती थी। घर की सुरक्षा हेतु स्त्रियाँ रात्रि जागरण करती थीं और जागरण का क्रम पूरी रात अनवरत रखने हेतु मनोरंजन के लिए स्त्रियाँ खोरिया (लोकनृत्य नाटिका) का खेल करते हुए रात बिताती थीं। खोरिया आरंभ करने के पहले वह परंपरा के अनुसार घर के निकट मंदिर में जाकर शिव–पार्वती की पूजा करती थी।

बारात चले जाने के दूसरे दिन स्त्रियाँ पूजा को गई तो सुप्रिया को रजस्वला होने के कारण घर पर ही छोड़ दिया गया था, तब यह सुअवसर आया–सुप्रिया मिलने आयी। वह एक उदास और बुझी हुई थी। आते ही मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में कसकर पकड़कर उनपर अपना सिर टिकाकर बोली–'रंजीत! जीवन में आपसे यूँ मिलना और इतने दिन का सामीप्य मैं जीवन में कभी भुला नहीं पाऊँगी। शायद इसी को जीवन का पहला प्यार कहते हैं। मैं तीन–चार दिन में यहाँ से चली जाऊँगी, फिर शायद जिंदगी में कभी मिलना नहीं हो, मगर मैं जहाँ भी रहूँगी, आपके साथ बिताये इन खुशी के लमहों को याद करके खुश हो लिया करूँगी। मगर आप हमेशा खुश रहना मेरे खातिर, मेरी खुशी की खातिर। पिताजी ने आपका जो अपमान किया है, उसके लिए मैं माफी माँगती हूँ। एक बार फिर कहती हूँ–आप हमेशा खुश और बहुत खुश रहकर मुझे कभी–कभी याद कर लिया करना। फिर थोड़ा रुककर बोली–'मैं आपको, जिंदगी के पहले प्यार को भुला नहीं पाऊँगी, इसलिए जब भी संभव होगा, आपको खत लिखूँगी। मगर आपसे एक वादा लूँगी, आप जवाब में मुझे कभी खत नहीं लिखेंगे। अगर पापा के हाथ पड़ गया तो आपने देख ही लिया कि किस तरह जलील करेंगे, उन्हें किसी की कोई परवाह नहीं है। उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। आप वादा करो। कहकर वह सिसकने लगी थी और सिसकियों के बीच ही काँपते शब्दों में बोल रही थी–बोलिये मेरी खातिर, अपने प्यार की खातिर वादा दे सकते हो आप। कहकर वह जोर से सिसकने लगी थी।

उनकी बात सुनकर मैं बड़ी उलझन में पड़ गया था। यह कैसा वादा माँग रही है कि वह पत्र लिखेगी और मैं जवाब नहीं दूँगा। मगर सिसकियों के ज्वार से उसका सारा बदन काँपने लगा लगा, तो मैंने भी काँपते स्वर में ही कहा

था–'सुप्रिया! अगर तुम्हारी खुशी इसी में है, तो मैं वादा देता हूँ।' सुनकर उन्होंने मेरे दोनों हाथों को चूमकर अपने माथे से लगाया और स्त्रियों के गीतों की आवाज नजदीक आती सुनकर आँसू पोंछते हुए चली गयी थी।

इसके बाद लगभग डेढ़ साल तक दस–पन्द्रह दिन में उनका पत्र आता था। पत्र में केवल किसी अंग्रेजी या हिंदी की किसी कविता की कुछ पंक्तियाँ, मुझे खुश और स्वस्थ रहने का और पत्र का उत्तर नहीं देने का अनुरोध होता था। बड़ी मुश्किल से संयम रख पाता था, मगर फिर भी उनके अनुरोध की रक्षा करता रहा। मगर डेढ़ साल बाद पत्र आना एकदम बंद हो गये, तो शुरू में मैंने इसका कारण उनकी परीक्षा की निकटता और बाद में पारिवारिक अनुशासन की कठोरता की स्थिति को माना, मगर जब बंद सिलसिला फिर से चालू ही नहीं हुआ, तो मैंने उनकी मजबूरी स्वीकार कर ली। एक दो बार चचेरी बहन के मायके आने पर उनसे बातों–बातों में सुप्रिया के बारे में कुछ जानने की चेष्टा की, तो उन्होंने कह दिया–वह लोग किसी से ज्यादा ताल्लुक नहीं रखते।

इसके एक दो साल बाद मैं भी जीवन की आवश्यकताओं में व्यस्त हो गया। जिंदगी की भागमभाग और व्यावसायिक सफलता के लिए संघर्ष में उन्हें ढूँढ़ने का प्रयास करना तो भूल ही गया, मगर किसी भी प्रसंग के कारण कानपुर और सुप्रिया का जिक्र भी मुझे कुछ लम्हों के लिए ही सही हमेशा भावुक जरूर कर देता था। ऐसे ही तीन दशकों का लंबा समय कब उड़ गया, पता ही नहीं चला। कई बार में आते–जाते लगभग 10–12 साल विदेशों में अध्ययन करते बीत गये। विवाह करके घर बसाने का विचार मन में जड़ जमा ही नहीं पाया।

जिंदगी एक तेज रफ्तार से दौड़ती रेलगाड़ी की तरह सबको पीछे छोड़कर निकल गयी। उसकी रफ्तार से उड़ी धूल के कुछ कण बालों में सफेदी बनकर चिपक गये। एक दिन सिंडीकेट की मीटिंग में प्रोफेसर रज्जाक ने मजाक किया–'अरे रंजीत भाई! हेयर डाइ करना शुरू करो। तुम्हारे बाल तुम्हारी उम्र की चुगली करने लगे हैं। ऐसे ही रहोगे तो लड़कियाँ तुम्हें अंकल कहने लगेंगी। ऐसे भागमभाग में जिंदगी निकल रही थी, सो हालात ये बने कि–

'चाह तो निकल सकी न पर उमर निकल गई।
पाँव जब तलक उठे कि जिंदगी फिसल गई।।

मगर आज जब तीन दशक के बाद दोनों की जिंदगी का पहला प्यार आमने–सामने था, तो दोनों बात शुरू करने का सूत्र ढूँढ रहे थे। आखिर मैंने ही मौन भंग किया–'सुप्रियाजी! मैंने तो आपको दिया गया वचन पूरी ईमानदारी से निभाया, फिर आपने पत्र देना बंद क्यों कर दिया?'

अब सुप्रियाजी का मौन टूटा–'रंजीत! हम लगभग तीन दशक बाद किसी दैवयोग से अचानक इस सफर में मिले हैं, मगर हम अजनबी तो नहीं हैं, जो आप मुझे आप और सुप्रियाजी कह रहे हैं। आप मुझे सिर्फ सुप्रिया कहेंगे और आप नहीं, पहले की तरह तुम कहोगे, तो मुझे अच्छा लगेगा। कहकर उन्होंने बड़ी आत्मीय दृष्टि से मुझे देखा।

'अच्छा सुप्रिया! मैं अपना प्रश्न दोहराता हूँ'–मैंने कहा।

'ओफफोह! लहजा तो बिल्कुल प्रोफेसरोंवाला हो गया है, कहते हुए उनके होंठों पर एक सलज्ज मुस्कान उभर आयी, तो मुझे आज से तीन दशक पुरानी सुप्रिया मिल गई। मगर इतना कहकर सुप्रिया थोड़ी देर के लिए मौन हो गयी, मानो शब्द ढूढ रही हो, फिर बोली–'समझ में नहीं आता, कैसे शुरू करूँ, कहाँ से शुरू करूँ?'

'कहीं से भी, जहाँ से तुम्हें उपयुक्त लगे'–मैंने उन्हें आश्वस्त किया। सुप्रिया थोड़ी देर पैर के अंगूठे को फर्श पर रेखा खींचने का उपक्रम करती रही, फिर उन्होंने कहना शुरू किया–'धामपुर से आने के बाद मन एकदम उदास और खिन्न रहने लगा। किसी भी काम में और पढ़ाई में तो मन बिल्कुल नहीं लगता था। एक दिन ऐसे ही खिन्न और अन्यमनस्क बैठी थी कि माँ ने एकदम बिना किसी भूमिका के सीधे चोटी पकड़कर झिझोड़ते हुए पूछा–'क्यों री! देख रही हूँ, जबसे धामपुर से आयी है किसी काम में तेरा दीदा ना लगे हैं, किसकी याद में खोयी रहती है हरवक्त कलमुंही।'

माँ का रौद्ररूप और उनके प्रिय संबोधन के अपमान से मन भय के साथ घृणा और वितृष्णा से भर गया, मगर किसी भी तरह बात तो संभालनी थी, सो बोल दिया–माँ! कोई बात नहीं है, डेढ़ महीने से कॉलेज नहीं गई, सो पढ़ाई में पिछड़ गई हूँ, यही सोचकर दिल घबराता है।' उसी समय एक पड़ोसिन के आ जाने से बात दब गयी, मगर यह ध्यान आते ही कि माँ का धामपुर का प्रसंग देकर क्रोधित होने का कारण वहाँ मेरे इलाज में उनके पतिदेव की मान्यता की अवहेलना के कारण है, मुझे किसी लेखिका का यह कथन–भारतीय नारी को अपने जीवन में सिर्फ आर्थिक और शारीरिक सुरक्षा के लिए एक आदमी की जरूरत होती है और शारीरिक सुरक्षा के लिए तो हर वर्ग के हर समाज में जरूरत होती है, एक प्रत्यक्ष सच प्रतीत हुआ था।

इस विचार पर सोचते हुए मुझे यह भी लगा कि–मेरी माँ जैसी अल्प शिक्षित मध्यमवर्गीय औरत अपनी शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करने के स्वार्थ में अंधी होकर इसके प्रदाता उस आदमी–अपने पति के प्रति इस तरह पूर्ण समर्पित और कृतज्ञ रहती है कि इस कृतज्ञताज्ञापन के प्रयत्न में संतान और खास तौर पर पुत्री उसके परिवार के प्रति कर्तव्यों की प्राथमिकता में बेहद निचले पायदान पर पहुँच जाती है।

उस दिन के बाद यह बात भी दिल में बैठ गई कि हर औरत के अंदर एक माँ होती है, यह बात हमारे समाज में पुत्री के प्रसंग में तो लगभग लफ्फाजी ही है। मेरी माँ जैसी औरत तो खुद कभी आम भारतीय परिवार की पुत्री रही होने और उस रूप में अपना भोगा अतीत भूलकर अपनी पुत्री की सहृदय संरक्षिका बनने के स्थान पर अंग्रेजों के जमाने के जेलर बन जाती है। लड़की पर सबसे ज्यादा अंकुश का अत्याचार माँ–एक महिला द्वारा ही होता है और इसका ठीकरा हर बात में हमारी महिला समाज सुधारकों द्वारा पुरुष प्रधान समाज का मातम मनाते हुए पुरुषों के माथे पर फोड़ दिया जाता है, तभी तो मेरी माँ के सामने कोई स्पष्ट कारण नहीं हाते हुए भी उस दिन के बाद उसकी चौकसी कुछ इस तरह बढ़ गई कि वह मेरे कॉलेज जाने और वापसी के समय किसी–न–किसी बहाने गली के नुक्कड़ पर तैनात मिलने लगी।

घर में मेरी पढ़ाई के लिए कोई अलग कमरा नहीं था। रात का खाना आठ बजे तक हो जाता था, फिर रसोई समेटकर मैं वहीं जमीन पर गद्दा डालकर तीन घंटे पढ़ती और सो जाती थी। उस दिन मैंने आपको पत्र लिखकर अपनी कॉपी में रख लिया, मगर उसे बारबार पढ़ते हुए कब नींद आ गयी, पता ही नहीं चला। सुबह माँ ने रसोई का दरवाजा खटखटाया तो हड़बड़ाहट में दरवाजा खोलने से पहले वह तह किया गया खत उठाना भूल गयी। बस माँ ने बिस्तर के पास कॉपी किताबों में अलग से रखे हुए करीने से तह बनाये गये उस कागज को जो वास्तव में पत्र ही था, को मेरे लिए उनके मन में पनप रही शंका का सूत्र मानकर उठा लिया और जेलर की तरह पूछा–ये क्या है?

खत अंग्रेजी में ही था और एक कविता की कुछ पंक्तियाँ थीं और संबोधन में किसी का नाम नहीं था, सो माँ फौरन तो कुछ स्थापित कर नहीं सकी, मगर जलती नजरों से उसने जब फिर वही सवाल दागा तो मैं माँ का रौद्ररूप देखकर घबरा तो गई, मगर बात संभालते हुए कह दिया–'माँ! अंग्रेजी की एक कविता है, मैं लिखकर याद कर रही थी।'

आज माँ को अपने अल्प शिक्षित होने का बड़ा दुःख हुआ, फिर भी

यह कहकर–तेरे वाऊजी से समझ लूँगी, उन्होंने उसे अपने ब्लाउज में खोंस लिया तो मेरे तो पैरों तले की जमीन ही खिसक गयी, मगर कर तो कुछ सकती ही नहीं थी।

पिताजी कुछ दिन से लखनऊ गये हुए थे, वहाँ उनके खिलाफ गबन का मुकदमा चल रहा था। एक पुराने घाघ एकाउंटेंट मेरे पिता का यह विभाग तब एकदम नया–नया ही था, जो विधवाओं और अनुसूचित जाति की कन्याओं के कल्याण जैसा कुछ था। यहाँ विधवाओं और स्कूल जानेवाली लड़कियों को अनुग्रह राशि प्रदान की जाती थी। पिताजी पर आरोप था कि उन्होंने जाली हस्ताक्षर करवाकर पैसे का गबन किया है। पिताजी सबको बाँटकर खाने में विश्वास करते थे, मगर एक युवा ईमानदार ऑडिट अफसर की जाँच ने भंडाफोड़ कर दिया था। गबन स्थापित होते ही सारे अफसरों में भुगान की जिम्मेदारी एकाउंटेंट (पिताजी) की बताकर पल्ला झाड़ लिया। इस पद के कई अन्य प्रत्याशियों ने बहुत जल्दी विभागीय जाँच कराके पिताजी को दोषी साबित करवा दिया। पिताजी सस्पेंड कर दिये गये और उनके खिलाफ कानूनी कार्यवाही अदालत में शुरू हो गयी थी।

तीसरे दिन पिताजी लौट आये। मैं रसोई निपटाकर पढ़ने बैठी ही थी कि रसोई का दरवाजा धड़ से खुला। शराब के नशे में धुत पिताजी माँ के साथ आये, उन्होंने मुझे सीधे हाथ से पकड़कर खड़ा किया और वह कॉपी पेज दिखाकर बोले–यह क्या है?

मैं तो हतप्रभ रह गयी। यह सोचा भी न था कि माँ पिताजी के आते ही ये बात उन्हें बात देगी सो, 'वो पापा! वो पापा! ये एक अंग्रेजी कविता है मैं याद कर रही थी लिखकर... कहते–कहते मैं हकलाने लगी, तो पापा ने चीखकर पूछा–'ये कविता के नीचे खुश रहने के लिए किसे लिखा है, बोल?'

पापा का रौद्र रूप देखकर मैं तो जड़ हो गयी, तभी पापा का एक झन्नाटेदार तमाचा गाल पर पड़ा, तो मुँह से चीख निकल गयी। इसके बाद पता नहीं, पापा कबतक हाथों और लातों से पीटते रहे! जब हाथों–लातों से थक गये तो उन्होंने रसोई के उपकरणों को इस्तेमाल करना शुरू किया। मैं तो अपनी माँ की मौजूदगी में बाप की एक दो मार खाकर ही तन की बजाय मन से इतनी आहत हो गयी कि मैंने बचाव करना भी छोड़ दिया।

माँ बीच–बीच में, अरे मारना छोड़कर यह पूछो कि इसने इत्ते और कित्ते खत लिखे हैं, इस कलमुँही ने अपने इस यार को और उस हरामजादे का नाम पूछ लेने के कर्तव्य का स्मरण कराके अपनी कर्तव्यपरायणता का परिचय दे देती थी, मगर मुझे पिताजी की मार से बचाने के लिए एक शब्द भी उनके श्रीमुख से नहीं निकल रहा था।

थोड़ी देर में पिताजी शायद थक गये तो उन्होंने स्टोव जलाने के लिए रखा केरोसिन का केन उठाया और बोले–'आज किस्सा ही खत्म कर देता हूँ हरमजादी का और वह केन उठाने के लिए आगे बढ़े तो माँ उन्हें रोकते हुए बोली–अरे! आप पहले ही परेशान हो कोर्ट कचहरी के चक्करों से, इस कलमुँही के लिए और क्यों बढ़ाते हो अपनी परेशानी? आज आप थक भी बहुत गये हो, चलो फिर देख लेना। कहकर वह पिता को रसाई से बाहर ले गयी। माँ के अपने पति के प्रति सहानुभूति संवाद के इस क्रूरकांड के शेष भाग की सुविधानुसार पुनरावृत्ति की चेतावनी भी अंतर्निहित थी।

इस कांड को अंजाम देकर माँ और पिताजी तो चले गये, मगर मैं तन और मन दोनों से पूरी तरह जड़ हो गयी थी। मार की पीड़ा से तन और ग्लानि से दिल फटा जा रहा था। एक दफा तो इच्छा हुई कि केरोसिन का केन उड़ेलकर आग लगा लूँ, मगर अब तन और मन इस कदर घायल हो गया था कि कुछ करने की हिम्मत नहीं हुई, इसलिए आत्महत्या करके खुद को खत्म भी नहीं कर सकी। सारी रात तड़प–तड़पकर सुबकी रही, मगर मेरी माँ कोई युवा पुत्री की सहेलीवाली माँ थोड़े थी, जो सांत्वना देने आती।

दूसरे दिन माँ ने ही रसोई का दरवाजा खोला मेरा सूजा हुआ मुँह और जख्मी हाथ–पैरों को देखकर बोली–सजा तो तुम्हें अपने करमों की ही मिली है, पर अब अंदर के कमरे में जाकर मरो, दोपहर को हल्दी गरम करके लगा दूँगी। मैं चुपचाप घिसटती हुई अंदर कमरे में चली गयी।

दूसरे दिन मेरी एक सहेली, जो मेरी ही जैसी किसी माँ की बेटी थी, उसकी एक किताब वापिस माँगने आयी तो मैंने चुपके से उसे अपने मामा का लखनऊ का टेलिफोन का नंबर देकर उन्हें मुझे कुछ दिन के लिए बुला लेने का अनुरोध करने को कहा। मेरे मामा के अपने एकमात्र पुत्र के विदेश चले जाने के बाद उनकी दूसरी संतान पुत्री की आकस्मिक मृत्यु से बड़े दुःखी रहते थे और कई बार माँ और पापा से मुझे गोद लेने की इच्छा प्रकट कर चुके थे। सहेली ने अपनापन निभा दिया। दूसरे दिन ही मामा का फोन आ गया। उन्होंने पापा से मामी की तबीयत खराब हो जाने की बात कहकर मुझे कुछ दिनों के लिए उनके पास भेज देने का अनुरोध किया था।

माँ और पिताजी को तो मुँहमाँगी मुराद मिल गयी। माँ ने मुझे तुरंत लखनऊ चलने के लिए तैयार किया और बोली–'वहाँ मामा–मामी के प्यार में आकर बह मत जाना और सजा तो तुम्हें तुम्हारी करतूत की ही मिली है। वैसे भी कोई तलवारों के घाव तो है नहीं, मामा–मामी रखेंगे तो महीने पन्द्रह दिन, उसके बाद तो हमपर ही बोझ बनोगी।'

माँ के वचन सुनकर मैंने यह निर्णय कर लिया कि अब इस घर में वापिस नहीं आऊँगी। अगर जरूरत पड़ी तो मामा–मामी के पैर पकड़कर कहूँगी कि भांजी की तरह नहीं नौकरानी की तरह रख लो। सब काम कर दूँगी, बस कुछ दिन रोटी–कपड़ा दे देना और एक उपकार कर देना कि कहीं छोटी–मोटी नौकरी लगवा देना, इंटरमीडियट तो कर ही चुकी हूँ। मगर इस तरह की नौबत नहीं आयी। मामी ने तो मेरी हालत देखकर मुझे ऐसे कलेजे से लगा लिया, जैसे मेरी सगी माँ ने कभी नहीं लगाया था, फिर सिसकते हुए बोली–हाय! कोई ऐसी बेरहमी से लड़की को मारता है, कहीं ठोर–कुठोर अन्दरूनी चोट लग जाती तो, और लग गयी हो तो क्या मालूम? अरे, बाप जवान बेटी को माँ के सामने इस तरह पीटता रहा और माँ ने रोका तक नहीं। मामी ने भर्राये गले से कहा, तो सहानुभूति का यह स्पर्श पाते ही मेरे आँसू बह निकले और मैंने सुबकते हुए कहा–'मामी! यह सब तो माँ का ही प्रायोजित कार्यक्रम था।' मामा जो अबतक जड़ से खड़े थे, मामी को इस भावुक दौर से उबारने के लिए थोड़े कड़े स्वर में बोले–अब उसकी मार का मातम मनाती रहोगी या कमरे में ले जाकर उसकी चोटें भी देखोगी। मैं डॉक्टर मालती को बुला लेता हूँ।

'मगर डॉक्टर को बतायेंगे क्या?' मामी हताश स्वर में बोली, तो मामा ने कहा–'डॉक्टर मालती तुम्हारी सहेली है, चाहे जो किस्सा गढ़ देना।'

डॉक्टर मालती के इलाज से और मामा–मामी के प्यार से चार–पाँच दिन में घाव भरने लगे, चोटों का दर्द भी जाता रहा, मगर मन अबतक घायल था।

एक महीना बीत गया। मेरी बी.ए. फाइनल की परीक्षा में डेढ़ माह रह गया था, मगर माँ–बाप ने मुझे बुलाने के बारे में बात करना तो दूर मामी से स्वास्थ्य के बारे में जानने की कोशिश भी नहीं की। फिर कुछ दिन बाद पापा अपने मुकदमें के सिलसिले में मामा के घर आये तो मैं उनके लिए पानी लेकर गई और पानी का गिलास उनके सामने करते हुए बोली–'पापा! बहुत थके हुए लग रहे हैं, क्या बात है?' सुनकर पापा ने मुझे खा जानेवाली नजरों से देखा और हाथ से गिलास को धकलते हुए गरजे–तुमसे मतलब, खबरदार आइन्दा मुझे अपनी सूरत मत दिखाना। पापा के रौद्ररूप और कटु शब्दों की चोट से

मेरा मन जमीन पर गिरे काँच के गिलास की तरह टुकड़े–टुकड़े हो गया। इस घटना के बाद मामा ने प्रयत्न करके मेरा परीक्षा केन्द्र कानपुर से बदलवाकर लखनऊ के ही एक कॉलेज में करवा दिया और इसकी सूचना भी मेरी माँ को दे दी।

परीक्षा खत्म हुए एक सप्ताह बीत गया था, पिताजी के केस का निर्णय हो गया था। गबन आरोप साबित हो जाने के कारण उन्हें छः मास के कारावास की सजा हो गयी थी, मगर मामा ने उनकी तुरंत जमानत करा ली थी, इसलिए वह जेल जाने से बच गये थे।

इस घटना ने मुझे स्तब्ध कर दिया था। मैंने एक बार कानपुर जाकर माँ–बाप से मिलने का फैसला किया। मगर मामा– मामी ने शायद मेरे लखनऊ आने के बाद पापा का उनके घर आने पर मुझसे किये गये व्यवहारवाली घटना को याद करते हुए मुझे समझाते हुए कहा–'अभी उनकी मनःस्थिति ठीक नहीं होगी, थोड़े दिन बाद चली जाना, हम भी तेरे साथ चलेंगे।'

इसके तीसरे दिन ही रात को पिताजी के गंभीर रूप से बीमार होने का फोन आया, तो मामा तुरंत कार में मुझे और मामी को लेकर निकल पड़े। कानपुर पहुँचते–पहुँचते 3–4 घंटे लग गये। वहाँ पहुँचते ही घर के बाहर से ही रोने–चीखने की आवाजों ने मुझे पिता की मृत्यु का आभास करा दिया था। मैं तो जड़वत् हो गयी, आखिर को वो मेरे पिता थे।

मामी ने बड़े वात्सल्य से मुझे सीने से चिपका लिया, मगर घर के अंदर पहुँचते ही माँ ने झपटकर मेरी चोटी पकड़कर दो–तीन झटके दे दिये, फिर छाती कूटती हुई बोली–'खा गई कलमुँही बाप को, अरे उन्हें तो उस दिन का ऐसा सदमा बैठा कि सबसे बोलना ही बंद कर दिये थे। कहते थे...फिर पता नहीं क्या सोचकर माँ ने आगे कुछ कहने के बजाय जोर से एक दोहत्थड़ अपनी छाती पर रसीद किया और फिर चीख–चीखकर रोना शुरू कर दिया। अवसर की नजाकत देखते हुए मामी ने बड़ी मुश्किल से मुझे माँ से मुक्त कराया, मगर जब दोनों भाइयों ने भी मुझे जलती नजरों से देखा तो मुझे लगा कि जमीन फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ, मगर न समय त्रेतायुग का था, न मैं जनकदुलारी सीता थी और मैं न अपने जनक की दुलारी थी, न जननी की।

मामा–मामी के निरंतर सान्त्वना देने पर थोड़ी देर में बड़े भाई ने मामा को बताया कि सस्पेंड होने के बाद से पिताजी की आमदनी कम हो जाने से सस्ती शराब और सिगरेट पीने लगे थे। तीन महीने पहले जब दिल का दौरा पड़ा था और मामा की सहायता से इलाज हो गया था, तब डॉक्टर ने उन्हें सिगरेट और शराब से तौबा करने को कहा था, मगर जबसे उन्हें यह अहसास हो गया था कि सारे सबूत उनके खिलाफ है और वह अकेले अभियुक्त बन गये हैं, तो उन्होंने शराब और सिगरेट खूब पीनी शुरू कर दी थी। यहाँ तक कि मामा की लखनऊ से भेजी महँगी दवाइयाँ वह केमिस्ट को ओने–पोने में बेचकर सस्ती शराब पी लेते थे। कुछ दिनों से हाथ–पैरों के साथ मुँह पर भी खूब सूजन आ गयी थी, सो खाना खा ही नहीं पाते थे। डॉक्टर ने एक सप्ताह पहले ही जवाब दे दिया था।

उस दिन जो कुछ हुआ, उससे मैं पिटाईवाले दिन से भी ज्यादा आहत मन लेकर तीसरे दिन लखनऊ लौट आई। तेरहवीं वाले दिन माँ ने मामा को कहा–भइया! तुम इसे गोद लेना चाहते थे ना, सो अब तुम्हीं ले जाओ इसे, मैं तो इस कलमुँही का मुँह देखना ना चाहूँ।' माँ के इस व्यवहार से अंदर से पूरी तरह टूटकर मैं मामा के साथ वापिस लखनऊ आ गयी।

मामा के पास रहकर एम.ए. कर लिया तो एक दिन मामा बोले–'बेटी! दो साल के बाद मैं रिटायर हो जाऊँगा, इसलिए मैं सोचता हूँ कि तेरे विवाह की जिम्मेदारी निभा दूँ। मामा की बात सुनकर मैं असमंजस में पड़ गयी, क्या कहूँ समझ में नहीं आया। बस डूबती आवाज से इतना ही कह पायी–'मामा! क्या मैं बोझ लगने लगी हूँ आपको। मेरी काँपती आवाज सुनकर मामी ने शायद मेरी मनःस्थिति भाँप ली, सो उन्होंने मामा को इशारे से कुछ कहा–मामा फौरन वहाँ से हट गये।

थोड़ी देर हम दोनों चुपचाप बैठे रहे, फिर मामी ने प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरा, तो मैं मामी का हाथ पकड़कर सिसक पड़ी। रोते–रोते मैंने आपके बारे में उन्हें सब कुछ बता दिया–मामी मैं तो अपना दिल रंजीत को समर्पित कर चुकी हूँ। आप लोग कर दोगे तो शादी कर लूँगी, मगर हृदय से समर्पित प्यार उसे नहीं दे पाऊँगी।

मामी से सारी बात सुनकर मामा ने कहा था–अगर आज नन्हीं जिंदा होती और ऐसा वचन निभानेवाला लड़का उसे मिला होता तो मैं तो उसे लखनऊ लाकर नन्हीं का हाथ सौंपना अपना सौभाग्य मानता और दो दिन बाद ही अपना वचन निभाने के लिए आपका पता लगाने मामा धामपुर के लिए रवाना हो गये।

धामपुर पहुँचने पर मामा को पता चला कि आपकी माँ की अचानक मृत्यु के बाद आप अपना मकान बेचकर कहीं बाहर जा चुके हैं। मगर मामा तो धुन के पक्के थे। वह लगातार आपकी खोज करते ही रहे, मगर वह जबतक सफल हुए आप किसी विदेशी यूनिवर्सिटी की छात्रवृत्ति पर वहाँ शोध के लिए जा चुके थे। काफी समय बीत गया इस भाग–दौड़ में।

कुछ दिनों के बाद मामा रिटायर हो गये और कुछ बीमार भी रहने लगे थे। नन्दू (मामा का बेटा) ने उन्हें लिख दिया था कि उसे अमेरिका में ग्रीनकार्ड मिल गया है, इसलिए उसका अब भारत में आकर रहना संभव नहीं है। वह चाहें तो अपनी देखभाल के लिए मुझे गोद ले लें और लखनऊ की कोठी को भी चाहें तो मुझे दे दें, उसे कोई ऐतराज नहीं होगा। कहकर वह थोड़ा रुकी। थर्मस में बचे हुए पानी में से दो घूँट पानी पिया फिर बोली–मैंने इस बीच पीएच.डी. कर ली और लखनऊ विश्वविद्यालय में लेक्चरर हो गयी, अब प्रोफेसर हूँ। कल मेरा राँची की योग शक्तिपीठ में हठयोग पर व्याख्यान है तीन दिन चलेगा यह कार्यक्रम।

अरे, मुझे भी बिरला इंस्टीच्यूट में व्यवसाय प्रबंधन पर लेक्चर देना है। मगर मेरी तो परसों फ्लाइट है रात को देहली के लिए। चलो, राँची में मेरे साथ ही ठहरना। मैंने उत्साह से कहा।

नहीं, रंजीत! अपना पता और फोन नंबर दो, तुम लखनऊ पहुँचकर मुझे फोन करना, मैं लखनऊ आकर मामाजी से मिलूँगा। सुप्रिया मैं भी अब अकेलेपन से बेहद ऊब गया हूँ। मैं मामाजी से मिल लूँगा, यह ठीक रहेगा न!' कहकर मैंने थोड़ा मुस्कुराकर सुप्रिया को देखा।

वह थोड़ी देर मौन रही, फिर बोली–नहीं रंजीत! मैंने अपना हृदय तुम्हें समर्पित किया है और वह अबतक भी तुम्हारा ही था और हमेशा तुम्हारा ही रहेगा, मगर अब मैं एक व्रत से बँध गई हूँ–जबतक मामा–मामी जीवित है, संपूर्णभाव से उनकी सेवा करूँगी। उनके रहते मैं अपना अपनत्व और साहचर्य किसी को समर्पित नहीं कर पाऊँगी। जिस लड़की को सगे माँ–बाप ने तन और मन दोनों से इतना आहत कर दिया कि वह अंदर से तो पूरी तरह मर ही गयी थी, उसे मामा–मामी ने अपनाकर अपने निश्छल स्नेह और प्यार देकर जो नया जीवन दिया है, वह तो उन्हीं की पूँजी, उन्हीं की धरोहर है मेरे पास। अपनी सेवा से अगर उसका छोटा–सा भी प्रतिदान कर सकूँ, तभी जीवन को सफल मानूँगी, मगर तुम अपना पता दो। मैं तुम्हें आज से तीन दशक पूर्व की तुम्हारी अल्हड़ सुप्रिया बनकर तुम्हें पत्र लिखूँगी, मगर आज तुमसे एक नहीं दो वादे लूँगी। बोलो दोगे?कहकर उन्होंने तरल आँखों से मुझे देखा।

उनकी आँखों की तरलता मुझे भीतर तक पूरी तरह भिंगो गयी। मैंने उन्हें वादा देने का आश्वासन दिया, तो वह बोली–एक तो वही कि तुम मुझे खत नहीं लिखोगे और अपना ख्याल रखोगे और खुश नहीं–बहुत–बहुत खुश रहोगे

और दूसरा!

पहले मैं तुम्हारे इस वादे में संशोधन चाहूँगा; क्योंकि अब तो तुम्हारे पापा नहीं है। मैंने अवसर का लाभ लेने के लिए कहा–सुप्रिया की बात काटते हुए कहा तो सुप्रिया मानो बेहद बेबस होकर बोली–वह बात नहीं, मगर मामा को आपकी जरा सी भनक मिल गयी तो वह मेरा व्रत किसी भी तरह पूरा नहीं करने देंगे रंजीत! तब मैं तुम्हें पाकर भी पूरी तरह नहीं पा सकूँगी, क्या तुम मुझे इस दुविधा में डालना चाहोगे, बोलो रंजीत! कहते–कहते सुप्रिया बेहद भावुक हो गयी।

सुप्रिया के इस सवाल से मैं विचलित हो गया, इसलिए जवाब नहीं देकर मैंने कहा–अच्छा, इसे छोड़ो, चलो बताओ दूसरा वादा क्या है?

यह सिगरेट पीना छोड़ दो, सुप्रिया ने एक सहृदय अभिभावक की तरह बड़े स्नेह से मेरी तरफ देखते हुए कहा।

सुप्रिया मैं तुम्हारी खुशी के लिए कुछ भी कर सकता हूँ, मगर फिर भी ऐसा वादा नहीं कर सकता, जिसे पूरा नहीं कर सकूँ, इसलिए इस समय तुम्हें एक ही वादा दे सकूँगा कि तुम्हारे खत के जवाब मैं तुम्हें खत नहीं लिखूँगा। दूसरा वादा नहीं दे सकने की मेरी मजबूरी को माफ कर देना। मैंने स्पष्टवादिता से कहा तो सुप्रिया ने फिर एक स्नेहिल अभिभावक की तरह प्रश्न कर लिया, मगर सिगरेट पीना छोड़ क्यों नहीं सकते?

सुप्रिया के प्रश्न का मुझे एकाएक तो उत्तर देते नहीं बना, सो थोड़ा सोचकर बोला–सुप्रिया! सिगरेट कोई अच्छी चीज नहीं है, यह मैं भी जानता हूँ, मगर पिछले तीन दशक में सिगरेट कबसे अकेलेपन का साथी बन गयी, पता ही नहीं चला। देखो सुप्रिया! सिगरेट में बुराई चाहे कितनी भी हो, अकेलेपन का इससे अच्छा साथी नहीं है। मैंने सुप्रिया को संतुष्ट करने का प्रयास करने के लिए कहा तो सुप्रिया ने प्रत्युत्तर में सवाल दाग दिया–'तो फिर तो मुझे भी सिगरेट पीना शुरू करना पड़ेगा। मैं भी तो अकेली ही हूँ तुम्हें खोकर।

तुम–तुम, क्यों तुम्हारे साथ तुम्हारे मामा–मामी हैं, मेरे साथ कौन है?कहकर मैंने प्रश्नवाचक नजरों से सुप्रिया को देखा तो उन्हें भी तार्किक जवाब नहीं सूझा, तब जैसे मुझे समझाने के लिए भावुकता का सहारा लेते हुए बोली–'अपने पहले पहल प्यार में एक साथ गुजारे समय की खुशगबार याद काफी नहीं है क्या अकेलेपन की त्रासदी से मुक्ति के लिए?'

इन किताबी और रूमानी बातों से हकीकत बदल नहीं जाती सुप्रिया! मैं अब भी अपने पहले वादे पर कायम रहने का विश्वास दिला सकता हूँ बस। कहकर मैं चुप हो गया।

तुमसे बहस करना बेकार है और खासतौर पर आज जब तीन दशक की लंबी जुदाई के बाद शायद किसी दैवयोग से हम मिल गये हैं। मेरे लिए यही काफी है कि तुमने मेरे जीवन के पहले पहल प्यार को पूरा सम्मान देकर जीवित रखा है। सुप्रिया ने मानो प्रणयसंधि स्वीकार करते हुए कहा और बेहद भावुक नजरों से मेरी तरफ देखते हुए मेरा हाथ कसकर पकड़ लिया, उसे चूमा, माथे से लगाया और दोनों हाथों में कसकर पकड़कर बैठ गयी। उनके गरम–गरम आँसू लगातार मेरे हाथ पर गिर रहे थे।

पता नहीं, हम कितनी देर तक ऐसे ही बैठे रहे, अचानक दरवाजे को धकेलने की आवाज हुई तो हम सँभलकर बैठ गये। स्टेशन मास्टर ने प्रवेश किया और बोले–अरे कल रात को तो आप एकदम अनजाने थे, मगर अब तो ऐसा नहीं लग रहा। संकट दो अनजानों को भी कितना करीब ला देता है। है न साहब। खैर इस बात को जाने दीजिए, मैं तो आपको खुशखबरी देने आया हूँ कि गाड़ी थोड़ी देर में रवाना होनेवाली है। अच्छा सर, आप दोनों को नई दोस्ती मुबारक हो, हैप्पी जर्नी, कभी इधर आना हो तो मिलिएगा जरूर, कहकर वह गरमजोशी से हाथ मिलाकर विदा हुए।

स्टेशन मास्टर के आगमन के साथ सुप्रिया वर्तमान में लौट आयी थी, इसलिए उनके जाते ही बोली–रंजीत! मामा–मामी के बाद मैं उनकी कोठी को बेचकर उस पैसे से उनके नाम से कुछ जरूरतमंद लड़के और लड़कियों की छात्रवृति का प्रबंध कर दूँगी, जिससे कोई मेरी सेवा पर स्वार्थ का कीचड़ नहीं उछाले। उसके बाद अचानक किसी दिन एक अकेली, निर्धन, गतयौवना औरत के रूप में शेष जीवन तुम्हारा साहचर्य, तुम्हारा सहारा पाकर बिताने के लिए तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ी हो जाऊँगी। उस दिन मुझे अपनाकर अपना यह तीन दशकों से सुरक्षित रखा प्यार आश्रय और साहचर्य दे सकोगे?बोलो, भावावेश में उनका स्वर बुरी तरह काँपने लगा था।

सुप्रिया! मैंने साहित्य नहीं पढ़ा। मैं तो मैनेजमेंट का बंदा हूँ। मगर मैंने और तुमने एक दूसरे के शरीर से तो प्यार किया ही नहीं है, अवसर ही नहीं मिला हमें तो इसका। अपना प्यार तो भावनाओं का प्यार है, दिल से दिल का प्यार है शायद इसी को अलौकिक प्यार कहते हो। तीन दशक तुम्हारी प्रतीक्षा में ही बीत गये हैं, अब जीवन का शेष भी तुम्हारी प्रतीक्षा में बिता सकता हूँ। मैं जीवन भर उस क्षण की प्रतीक्षा करूँगा–जब तुम अपने समस्त पारिवारिक, नैतिक बंधनों से और अपने व्रत से मुक्त होकर स्वयं मेरे पास आओगी। पर आज दैवयोग से ही सही तीन दशक के बाद हुई मुलाकात के बाद दोबारा कब मिल सकें और क्या पता मिल पायेंगे भी या नहीं यह निश्चित तो नहीं है, इसलिए आज मैं भी तुमसे दो वादे माँगता हूँ। बोलो दोगी वादा। मैंने कुछ अधीरता से पूछा।

सुप्रिया ने प्रश्नवाचक नजरों से मुझे देखा, तो मैंने कहा–'घबराओ नहीं, मैं कोई ऐसा–वैसा वादा नहीं माँगूँगा।'

'मुझे मालूम है। आप कहिये तो। आपको वादा देने के बाद अगर अब जीवन में कभी नहीं भी मिले तो आज इस मिलन की घड़ी में वादा ही सही–आपको कुछ तो दे सकी–यह संतोष और इसकी याद मेरे जीवन की धरोहर तो मेरे पास रहगी'–दृढ़ता से बोली।

तो सुनो, पहला वादा यह दो कि अब कभी पत्र देना बंद नहीं करोगी, मैं इन पत्रों में तुम्हें, तुम्हारा प्यार पाकर खुश और स्वस्थ रहूँगा। दूसरी अपनी किसी खुशी में शामिल करो या मत करो, मगर दुख की किसी भी घड़ी में अपना भागीदार जरूर बनाओगी। बोलो, देती हो वादे?–मैंने बड़ी अधीरता से पूछा।

सुप्रिया ने आँसू भरी आँखों से मेरी तरफ देखा, शायद उनकी आवाज अब भी काँप रही थी, इसलिए उन्होंने केवल सिर हिलाकर स्वीकृति दी और अपने हाथों में हाथ थामे मेरे हाथ को और भी कसकर पकड़ लिया और मेरी छाती पर अपना सिर टिकाकर आँखें मूँद लीं। सुप्रिया बेहद आश्वस्त लग रही थी, मगर मैं अन्जाम को समझ रहा था। राँची पहुँचकर हम अनिश्चित काल के लिए या हमेशा के लिए अलग हो जायेंगे। यही हमारी नियति है।

मैं रेलगाड़ी के साथ दौड़ रही डबल लाइन की दूसरी पटरी को देख रहा था, जो दूर क्षितिज पर आपस में मिलती दिखाई देती थी, मगर वह वास्तव में कभी एक दूसरे से नहीं मिलती। एक समानान्तर दूरी उन्हें हमेशा एक दूसरे से दूर रखती है। मेरा और सुप्रिया का यह आज का अकस्मात मिलना भी ऐसा ही मिलन है। भविष्य में हम शायद ही कभी मिलेंगे। अकेलेपन को अपने ऊपर हावी नहीं होने देने के लिए मैंने जिस सिगरेट का सहारा लिया था, उसके लंबे साहचर्य के कारण मेरी साँसों की गाड़ी पिछले तीन–चार सालों से एक ही फेफड़े की लाइन पर चल रही है, जिससे अपने साथी के वियोग में मेरा शेष एकमात्र फेफड़ा भी काफी निर्बल हो चुका है और डॉक्टरों के अनुसार वह साँसों की रेलगाड़ी को दो–तीन साल से ज्यादा नहीं चला पाएगा, अगर मैंने सिगरेट नहीं छोड़ी तो। मैं समझता हूँ और मानता हूँ कि यह कोई अच्छी बात नहीं है, मगर किसी शायर ने शायद ऐसी ही स्थिति में लिखा होगा–आखिरी वक़्त में क्या खाक़ मुसलमां होंगे।

कहानी

चन्दन की आँच

निर्मला तिवारी
चेरीताल, जबलपुर
9479640496

उगता हुआ सूरज भी चमकीला नहीं दिखता। मन की मलिन सी काली छाया अंदर से उठकर जैसे क्षितिज पर फैल जाती है।

कदम बढ़ना चाहते हैं, पंख उड़ान चाहते हैं, लेकिन... लेकिन चारो ओर लक्ष्मण रेखाएँ दहक रही हों, तो कोई क्या करे, कैसे बचे?

मैं अपने लिए थी ही कहाँ?मेरा तो एक अंश भी मेरा न था, न मेरे लिए था। मुझे मुझसे छीन लिया गया था, पग–पग पर नुकीले काँटे, पत्थर बिछा दिये गये थे।

''बड़ी बेटी हो घर की, जैसा, जो तुम करोगी, वही ये तुम्हारे छोटे भाई–बहन सीखेंगे। आचरण अच्छा रखो।''

चारों ओर लोहे की दीवार थी। टकराती तो मर जाती और अगर न टकराती, तो भी कौन–सा जी जाती मैं। मरना तो तय था ही। तो मरी न मैं?कितनी–कितनी बार मरी, क्या–क्या याद करूँ?

हाँ, इस मरुभूमि में कहीं–कहीं हरियाली भी है। अभी उस दिन...। 'आशू, खाना बन गया?समय हो गया है, कहीं लेट न हो जाऊँ?

'आह! मैं तो उठ ही नहीं पा रही हूँ–दर्द के कारण सिर फटा जा रहा है।'

तुरंत ही दवा, बाम, चाय...सब कुछ हाजिर हो गया मेरे लिए। 'आशुजी! तबीयत ज्यादा खराब हो, तो छुट्टी ले लूँ आज?मेरे ऑफिस जाने के बाद कोई दिक्कत न हो...।

'नहीं–नहीं, आप ऑफिस जाइए, मैं ठीक हो जाऊँगी.. दवा तो ले ली है न?'

सिर्फ ब्रेड खाकर वे निकल गये थे और मेरे आँसू छलक पड़े थे। ना, तकलीफ के कारण नहीं, संवेदना की, प्रेम की नदी मन की अन्दरूनी तहों को तर कर गई थी, वही भाप बनकर वह निकली थी।

फिर भटक गया मन। जख्मों से जिंदगी भर जाए, तो जख्म ही सुकून देते हैं।

वे दिन... वे दिन अब भी मेरे आसपास ही मँडराते रहते हैं और दंश मारने में कभी कसर नहीं छोड़ते।

सब कुछ तय हो जाने के बाद ही बनाया गया था मुझे.. क्या हुआ अगर मैं सुशिक्षित थी?क्या हुआ अगर मैं अच्छी नौकरी में थी?कौन सुनता?

'हमारे परिवारों में शादी–व्याह घर के बुजुर्ग ही तय करते हैं... बच्चों की मनमानी नहीं चलती। बोलने के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं।'

समीर के कंधों पर सिर रखकर रो ली। खूब रो लिया मैंने। समीर का वह दुःखी, हताश चेहरे जिंदगी भर के लिए जेहन से चिपककर रह गया।

ना...बिल्कुल नहीं थी, अम्मा, दद्दा, बाबा, भैया किसी का भी विरोध करने की हिम्मत जरा भी नहीं थी मुझमें।

और अब?अब क्या हुआ?वही तो हूँ न मैं?एक कड़वी–सी मुस्कान छलक उठती है मेरे चेहरे पर।

सुना तो है कि बहुत रगड़ने पर चंदन से भी आग निकल पड़ती है। लो, निकली न!

समीर ने पहली फसल बोई थी सपनों की! कैसी सुकून और राहत भरी! सारी दुनिया पाँवों तले महसूस होती।

वह कहता, मैं सुनती; मैं कहती, वह सुनता। खूब समझते थे हम दोनों एक दूसरे को। मन के अंदर के अनकहे शब्दों को भी पढ़ लेते और बिना बोले जवाब भी दे देते। लेकिन हमारे प्यार की यह बेल मुंडेर न चढ़ पाई।

'क्यों इतना डरती हो आशू?थोड़ी हिम्मत तो करके देखो! हमारे घर में तुम्हारा स्वागत होगा। बस एक बार दहलीज पार करके निकल आओ। थोड़ी वो हिम्मत करो। तुम्हारे घर के लोग कभी राजी न होंगे हमारे रिश्ते के लिए! तुम्हें बाहर निकलना ही होगा।'

निकलूँ, मगर कैसे?एक ही बार निकलना होगा, मगर कैसे?दद्दा के माथे का त्रिपुंड डराता, अम्मा के मंदिर की घंटी डराती, घर का सात्विक रहन, पंडित परिवार।

शायद संस्कारों की जड़ें बहुत गहरी थीं। संस्कार?ये ही होते हैं क्या संस्कार?खुद को मारकर खूब गहरे दफन कर देना...सबकी खुशी के लिए खुद को भूल जाना। ये संस्कार थे या साहस की कमी?

दादी की कहानी का अब भी जिक्र हो जाता है जब तब। सुमन बुआ के साथ क्या नहीं हुआ?गैर जात के पुरुष से प्यार?विवाह का इरादा?इतना बड़ा पाप?

दादी गुस्से में गरज रही थी। दादी .. बुआ की जन्मदात्री। तुम्हें भी मार दूँगी और खुद भी मर जाऊँगी। मगर याद रखना सुमन... मैं बाजपेइयों के इस बेदाग कुल पर कलंक न लगने दूँगी। तुम अभी नादान हो, समझती नहीं हो। लेकिन मैं खूब समझती हूँ, ऐसी बातें लोग पीढ़ियों तक याद रखते हैं।

आँखों से आग और पानी दोनों ही बरसा रही थीं दादी और बुआ?बुआ खड़ी–खड़ी काँप रही थीं। भय, परिवार का लिहाज एक तरफ, दूसरी तरफ सिर्फ प्रेम। प्रेम का पलड़ा भारी था, बहुत भारी। सिर झुका रहा, लेकिन मजबूती नहीं झुकी, तो नहीं झुकी।

बुआ अड़ी रहीं अपनी बात पर। शादी करेंगी, तो विपिन खरे से... वरना...।

अपनी ही बेटी से हार कैसे मंजूर कर लेती दादी?आँखों से जैसे लपटें निकल रही थीं।

'तो फिर देखो तुम सुमन....!'

सबके देखते–देखते ही दादी ने दौड़ लगा दी और आँगन में बने कुएँ में कूद पड़ी।

हाहाकार मच गया। गनीमत कि सब आसपास ही थे। तुरत–फुरत दौड़ मच गयी और बड़ी कोशिशों के बाद ही दादी को बचाया जा सका।

लेकिन सुमन बुआ?वे तो बुरी तरह घिर गई थीं। छटपटाहट का ओर–छोर नहीं, लेकिन इस चक्रव्यूह से बाहर आएँ कैसे?स्वार्थी, जिद्दी, हत्यारिन, बदचलन जैसे बड़े–बड़े आरोपों तले दब गयी थीं वे।

अंततः उन्होंने अपने शरीर से उस आत्मा को निकाल फेंका था, जो जीना चाहती थी, खिलखिलाना चाहती थी।

शरीर का क्या है, विपिन खरे से न व्याहा गया, रवि दीक्षित से व्याहा गया। धूमधाम से बारात आई, फेरे लिए, चुनर ओढ़ी और हर लड़की की तरह ससुराल में रच–पच गई।

लेकिन मन?एक बार प्रज्वलित अग्नि पर पानी पड़ा तो फिर कभी चिनगारी तक न दिखी। पत्नी बनीं, बहू बनीं माँ, माँ बनी पर फिर कभी किसी ने बुआ को हँसते–मुस्कुराते नहीं देखा।

और अब मैं?मैं भी वहीं खड़ी हूँ, जहाँ से सुमन बुआ जिन्दगी हारकर जिन्दगी में आगे बढ़ गयी थीं।

मेरी बारात भी आयी, स्मार्ट! शिक्षित वर, अच्छा परिवार, सब कुछ तो था। सुखी होने के लिए और क्या चाहिए? अच्छी, आज्ञाकारी बेटी का तमगा पहनाकर मुझे विदा कर दिया गया, एक यज्ञशाला के लिए, जहाँ मुझे आजीवन हविष्य की मूक भूमिका निभानी थी।

भीतर तक पैठी गहरी उदासी को जाने कितनी तहों में छुपाकर मैं नये घर में चली आई थी।

समय–समय पर हँसती भी, मुस्काती भी, बातें करती और खूब चहकती भी। ऊपर से तो एकदम सामान्य लगती। मन के अंदर कौन झाँक पाती है। मैं ही कभी–कभी अपने मन से मुलाकात कर आती, जहाँ अब भी समीर की यादें महक रही थीं। समीर के चेहरे को आँखों में बुलाकर प्यार कर लेती, आँसुओं से यादों को नहलाकर, आँखें पोंछकर, फिर मन के दरवाजे बंद कर निकल आती।

कोशिश तो यही करती कि पकड़ी न जाऊँ कभी, लेकिन...'कहाँ खो जाती हो रह–रहकर? कोई काम ढंग से नहीं करती। ये देखो, फिर तुमने प्रेस से कपड़े जला दिये।

बुरी तरह सहम जाती मैं। ये लोग कुछ समझ न जाएँ कहीं। भय के बीच जीना आसान तो नहीं!

ज्यादा वक्त नहीं लगा कि अपने इस नए घर–परिवार, पति और अपने जीवन के बीच कच्ची कड़ियाँ समझ में आने लगीं। खुद को कैसे सँभालूँ, कैसे इस नये परिवेश में तालमेल बिठाऊँ, इसी जाल में उलझती गई। जिसे जीवन–साथी समझकर जीवन सौंपा था, वह साथी न था, जीवन का स्वामी था। वह स्वामी, और मैं? मैं गुलाम थी उसकी। लेकिन क्यों?

'कहाँ ध्यान रहता है तेरा? वो देख, दूध उफनकर गिर रहा है।'

एक झन्नाटेदार थप्पड़ से लड़खड़ाकर मैं गिर पड़ी थी। स्तब्ध होना, खुद को जलील होते देखना, आँसुओं के दरिया में डूबना–उतराना शुरू हो गया था एक माह के अंदर ही।

शारीरिक चोट से ज्यादा अपमान सालता। मैं क्या कोई अपराधिनी थी, जो हर छोटी–छोटी बात पर दंडित होऊँ? सहन न होता तो कमरे में बंद कर लेती खुद को और आँसुओं में डूबती रहती।

'क्या पागलपन है बहू यह? अरे, यह सब तो घर–गृहस्थी में चलता रहता है। ऐसे दिल पर थोड़े ही लिया जाता है। अब क्या कहें....हमने भी तो जिंदगी भर सहन ही किया है न!'

सासू माँ के स्वर में संवेदना तो होती, लेकिन यह संदेश भी छिपा होता कि स्त्रियों पर हाथ उठाना कोई बड़ी बात नहीं होती। स्त्रियाँ तो महज स्त्रियाँ होती हैं। यह सब सहन करना ही होगा और यह सहने के लिए मुझे खुद को खूब दबाना, खूब समझाना पड़ेगा।

भूल गई हँसना–मुस्कुराना! चाहती तो यही थी कि सब कुछ भूलकर...लेकिन ऐसे में तो बार–बार याद आता वो मीठा सपना, जो बीच में ही टूट गया था।

दर्द और भी गहरा हो जाता। सूजा चेहरा और लाल आँखें लेकर ऑफिस जाती, तो सहकर्मियों से नजरें मिलाने से भी शर्म लगती।

मैं अक्सर ही चर्चा का विषय होती–सहानुभूति, सलाहें, दया, व्यंग्य...क्या–क्या नहीं होता उस चर्चा में।

'बहुत ही दुष्ट है ये लोग तो...।'

'ऐसे कोई पीटता है अपनी पत्नी को।'

'पर मैडम! आप क्यों इतना दबती है, विरोध क्यों नहीं करती....?'

विरोध? क्या होता है यह? मैं पढ़ी–लिखी तो थी, लेकिन बंदिनी की रिवाजों की कोई क्या कहेगा? कोई कुछ कह न दे...। उफ, वर्जनाओं ने किस कदर जकड़ रखा था मन–मस्तिष्क को!

मेरा हाल देखकर अम्मा व्यथित होतीं...आँखों में आँसू भरकर मुझे समझाती।

'बहुत–से होते हैं बिटिया ऐसे कठोर स्वभाव के। तुम्हीं को सब्र से काम लेना होगा। घर–परिवर बढ़ जाने पर बदल भी जाता है मर्द।'

गहन पीड़ा और वेदना के बीच वे दो आँखें...। ऑफिस के केबिन से पढ़ती रहतीं मुझे, मौन निःशब्द। सहानुभूति पगी, तरलता से भरी...पढ़ती रहती मुझे।

'मैडम! यह दवा और चाय साहब ने भिजवाई है आपके लिए। कह रहे थे माथे पर चोट है, दर्द होगा...आप देवा ले लें।

उस दिन...।

थकावट और दर्द से शरीर टूट रहा था। घर पहुँचूँ और बिस्तर के हवाले हो जाऊँ।

'टैक्सी से आने की क्या जरूरत थी? थोड़ा रुककर बस का इंतजार नहीं कर सकती थी? ऐसी आजादी से पैसे उड़ाओगी, तो चल चुकी गृहस्थी।'

लाल–लाल आँखें निकालकर सुधीर गरज रहे थे। ओफ! ऐसा गुस्सा! काँपने लगी थी मैं! क्यों आई टैक्सी से? कैसे बताऊँ इन्हें?

जाने कब धीरे से मेरे पास आकर खड़े हो गये थे वे।

'मौसम बिगड़ रहा है और आपकी तबीयत भी ठीक नहीं लग रही है। कबतक बस का इंतजार करेंगी! टैक्सी से निकल जाइए आज।'

मिश्री से मीठे शब्द कानों में पड़े तो जैसी शीतल बयार छूकर गुजर गई। अद्‌भुत खिंचाव था उस व्यक्तित्व में। घबराकर ही तुरंत टैक्सी रोककर मैं बैठ गयी थी।

शायद अम्मा की आशा फलीभूत हुई। बहुत वेदना सहने के बाद फूल–सी शुभी ने मेरी गोद में आँखें खोली तो अद्‌भुत आह्लाद से मन भर उठा।

'हाँ, डॉक्टर साहब! बात तो खुशी की है, लेकिन पहली संतान अगर ईश्वर लड़का दे तो वह खुशी कुछ और ही...।'

पश्चाताप में लिपटा सासू माँ का स्वर था। सुधीर मौन थे। सहमति का लक्षण मौन ही तो होना है ना!

अम्मा–दद्दा के लगातार आग्रह आ रहे थे। छोटे भाई नलिन का ब्याह तय हो गया था–'आशू दो–चार दिन पहले ही आ जाना, बहुत सारी तैयारियाँ करनी है।'

मायके अपने मन से थोड़े ही जा सकती थी मैं। अनुमति लेना आवश्यक था।

'अब, बुलाया है उन्होंने तो चली जाना, लेकिन वहाँ रुकना जरूरी नहीं है। काम निबटाकर लौट आना। अम्मा काम नहीं कर पाती है...रात का खाना समय से।'

बड़े ही बेमन से सुधीर ने जाने की अनुमति दी। पितृगृह में उत्सव! खुशी ही खुशी। ढेरों बातें, हँसी–ठहाके। बहुत चाहने पर भी घर जल्दी लौटना न हो पाया। सारा सामान खरीदकर घर में लाना, व्यवस्थित रखना, सारा कुछ करते–करते ही रात के दस कब बज गये, पता ही न चला।

छोटी–सी शुभी गोद में। रिक्शा करके घर पहुँची। देर बहुत हो चुकी थी। डर के मारे प्राण कंठगत हो रहे थे। ठंड का मौसम! खूब गहरा गई थी रात।

दस्तक दी बंद द्वार पर

फिर कुंडी खटकाई
फिर आवाज दी।
दरवाजा नहीं खुला।
डर बढ़ता गया। चारो ओर सन्नाटा। अंदर की आवाजें बाहर सुन पा रही थी मैं।
'सुधीर, खोल क्यों नहीं देता दरवाजा?आ जाने दे।'
'नहीं अम्मा! थोड़ी नसीहत लगने दो इसे, ऐसे नहीं सुधरेगी।' सुधीर की जहर भरी आवाज थी। अम्मा की बात नहीं मानी उसने।
'आने दो न! छोटी बच्ची है गोद में। कहीं ठंड लग गई तो?'
'लग जाने दो। तभी समझ में आएगा इसे आटे–दाल का भाव।'
कैसे काटी वह रात! न इस घर में अंदर जा पा रही थी, न उस घर में लौट सकती थी।
खूब सजा मिल गई थी मुझे। कई दिनों तक सुन्न रहा दिमाग।
आपका मुँह बहुत उतरा हुआ लग रहा है। गरमागरम चाय पी लीजिए, अच्छा लगेगा।
उन मीठे शब्दों का जादू। जाने क्यों, समीर याद आ जाता। मैं घबराने लगी थी, उन आँखों से, वाणी से।
तपती धूप में पाँवों के नीचे कोमल घास आ जाए तो... वह राहत भुक्तभोगी ही समझ सकता है।
'आप मेरा टिफिन ले लीजिए... ये क्या, आपके पास तो अचार और रोटी है।'
बहुत कठिन होता नजर उठाकर उन मोहक नजरों का सामना करना। कैसा सम्मोहन! बहुत सँभालना पड़ता खुद को।
जिस कूल किनारे पर मैं खड़ी थी, वह मुझे धकेलकर मँझधार में फेंकने को खुद ही उतावला हो रहा था, मैं कितना सँभलूँ, कैसे सँभलूँ?
'कैसी भड़कीली साड़ी पहनी है?आफिस काम करने जाती है या रूप दिखाने?'
'यह कौन था, जो तुम्हें छोड़ने घर तक आया था?'
'आज तुमने फिर अम्मा की सब्जी में नमक तेज कर दिया?जान लेना चाहती क्या उनकी?'
नुकीले पत्थर की तरह हर शब्द सीधा दिल पर प्रहार करता, चोट पर चोट...।
थकावट, तनाव, काम का बोझ...वो नींद होती थी कि थके शरीर की मूर्च्छा?
'बाल पकड़कर झकझोरने से ही छटपटाकर जाग जाती मैं।' 'शुभी कबसे रो रही है और तू घोड़े बेचकर सो रही है...?'
आज फिर आपकी आँखें लाल है। नींद नहीं हुई क्या?थोड़ी देर आराम कर लीजिए। फाइल इधर दीजिए मुझे। मैं देख लेता हूँ।
धीमे, मीठे शब्दों से मन में जैसे मंजीरे से बज उठते! किन्तु यह सुख मेरे भाग्य का थोड़े ही था। सुधीर का अदृश्य आतंक हावी ही रहता मन पर।
विरक्ति और नफरत का कुहासा हर दिन घना हो रहा था। हर कठोर व्यवहार मुझे एक कदम पीछे खींचता, सुधीर से दूर...! मन उलझता जा रहा था, जीवन बीत तो रहा है, ऐसे ही छटपटाते हुए जीवन गुजार दूँ या .... ?
एक मद्धिम–सी आशा की किरण दिखने लगी थी। एक दीप अपने पीछे बुझाकर मैं चली आई थी और अब...अँधेरे से निकलकर सुख से जीने की चाह गुनाह है क्या?
'आशिमा जी, आप आत्मनिर्भर हैं, शिक्षित हैं, जीवन आपका है, इसे कैसे जीना है, यह आपके ऊपर निर्भर है।
हाँ, वे शब्द मुझे आश्वस्त कर रहे थे। और मैं?कभी मायके के परिवार के बारे में सोचती, कभी ससुराल के बारे में। ये क्या कहेगा, वो क्या सोचेगा, क्या जवाब दूँगी, क्या करूँ...उलझन ही उलझन।
जानती हूँ, जीवन बहुत बड़ा नहीं होता और यह छोटा–सा जीवन हर पल आतंक, अपमान, दबाव तले ही बीतता जा रहा है।
पानी सिर से ऊपर होने लगा, तो फैसले की घड़ी नजदीक आने लगी। डूब जाने दूँ जीवन को या बचा लूँ अपने लिए?
फैसला कर लिया और सुना भी दिया...।
'क्या बक रही हो?ऐसा कभी नहीं हुआ हमारे कुल में। कोई भी बेटी ससुराल छोड़कर नहीं आई...।'
मेरा घर?वो मेरा घर है?दाँत पीसती हूँ।
'कहाँ जाओगी, देख लूँगा...मायकेवाले दो कौड़ी के। कोई पूछता तो है नहीं, मिजाज इतना गर्म...।'
जोर का थप्पड़ खाकर मैं गिर जरूर पड़ी, लेकिन फिर जो उठी, तो उठ ही गई।
साहस की कमी के चलते समीर को खो दिया था मैंने। कसक मिटी थोड़े ही है। कहाँ तक लड़ूँ में खुद से, सुधीर से, अपने घरवालों से?
'एक आवाज पर उपलब्ध हूँ आशिमाजी! जब चाहें, पुकार लें...।'
आँखों से, शब्दों से, शीतल मेघ बरस गये थे।
मन तो भीगा ही, तन भी फूल जैसा हल्का हो आया था।
नहीं डूबने दूँगी अपनी नाव।
नये घर में गृहस्थी जुटाने में मैं अकेली नहीं थी, शुभी को भी मुझे अकेले नहीं सँभालना पड़ा। चौतरफा भर्त्सना झेलने के लिए भी वे मेरे साथ खड़े रहे।
खूब गरजा बरसा तूफान।
अब मैं स्थिर थी। मालूम था, अकेली नहीं हूँ अब।
नहीं बनूँगी सुमन बुआ मैं। क्यों बनूँ?जबकि मैं जानती हूँ, उजाले की यह खिड़की, जो मैंने खोल ली है, मेरा घर हमेशा प्रकाशित रखेगी।
कोई क्या कहेगा?सब बदनाम करेंगे–ऐसा करता है कोई?बसा बसाया घर..!
कुछ नहीं सुनना मुझे। बाजपेइयों के उस प्रतिष्ठित परिवार की मर्यादा क्या निभाई नहीं मैंने?उनकी खातिर एक बार खुद को खत्म कर दिया, दूसरी बार सुधीर के परिवार के लिए...।
लेकिन मुझे क्या मिला?खुश हुआ कोई?जीना चाहती, जो सुधीर के तीखी कड़वी घातक दहाड़ों से उपजता था। आए दिन मार खाने के उस अपमान से घृण है मुझे।
खौल रहे हैं दादाजी! अम्मा रो रही है, दद्दा तमतमाए घूम रहे हैं और भाई लोग...?
'खबरदार जो इस चौखट पर पैर रखा! मर गई तुम हमारे लिए।'
करुणा से भीगी हँसी आ ही गयी मुझे। तुमलोगों के लिए जीकर भी क्या मिला मुझे?
अब मैं श्रीमती आशिमा साहू हूँ। मेरे पास अपनी हँसी, उल्लास और खुशी है। ये बची हुई छोटी–सी जिंदगी मेरी है। अब मैं इसे अपने ढंग से जिऊँगी...पहली बार।

कहानी

ध्रुवस्वमिनी

अरुण कुमार सिन्हा
उकुनाग्राम
विशाखापत्तनम
6302198456

ध्रुव देवी का पूरा नाम ध्रुवस्वामिनी देवी था। वे सम्राट समुद्रगुप्त की पुत्रवधू थीं। सम्राट समुद्रगुप्त पहले ऐसे सम्राट थे, जिनके पास समुद्र में युद्ध के लिए नौ–सेना और सामुद्रिक युद्धपोत थे। सम्राट समुद्रगुप्त के अधिकार में पूरी भारत भूमि थी, जो सम्राट अशोक या बादशाह अकबर के शासनकाल में भी नहीं थी। सम्राट समुद्रगुप्त गुप्तवंश के शासक थे। इस गुप्तवंश की स्थापना सम्राट चन्द्रगुप्त ने की थी। यह सम्राट चन्द्रगुप्त I उस सम्राट चन्द्रगुप्त से अलग थे, जिसने चाणक्य के साथ मिलकर नंदवंश का नाश किया था और पाटलिपुत्र (पटना) में मौर्यवंश की स्थापना 325 BC में की, जिसमें कि सम्राट अशोक हुए। इसके प्रायाः 500 साल बाद चन्द्रगुप्त I ने पाटलिपुत्र (पटना) में ही शुंग वुश के राजा का विनाश कर 325 AD में सिंहासन पर बैठा और गुप्तवंश की स्थापना की। इस वंश में सम्राट चन्द्रगुप्त I के अलावा उनके पुत्र सम्राट समुद्रगुप्त फिर उनके द्वितीय पुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त II (विक्रमादित्य) हुए। सम्राट समुद्रगुप्त अत्यन्त प्रतापी एवं युद्धप्रिय थे। वे हर तरह के हथियारों के संचालन में प्रवीण थे। वे ऊँचे कद के थे और उस समय प्रचलित कोई हथियार ऐसा नहीं था, जिसके निशान उनके शरीर पर न हो। लेकिन एक चमत्कार की बात थी कि उनके चेहरे पर कोई निशान नहीं था। इसलिए वे राजाओं के पारंपरिक वस्त्र न पहनकर ट्रैक सूट की तरह का वस्त्र पहनते थे। वे बहुत अच्छे संगीतज्ञ और वीणावादक थे।

सम्राट समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम था रामगुप्त और छोटे का नाम था चन्द्रगुप्त, जो बाद में चंद्रगुप्त II या विक्रमादित्य कहलाया। बड़ा पुत्र रामगुप्त क्लीव (नुपंसक), कायर, दुश्चरित्र, अति प्रतापी, दयालु और सुंदर शरीरवाला था। सम्राट समुद्रगुप्त अब वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुके थे और बीमारियों से ग्रसित हो गये थे। अभी तक उन्होंने अपने उत्तराधिकारी की घोषणा नहीं की थी। परंपरानुसार रामगुप्त ही उत्तराधिकारी था, ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण। लेकिन समुद्रगुप्त एवं प्रजा चन्द्रगुप्त को ही अगले शासक के रूप में देखती थी। इसलिए सम्राट समुद्रगुप्त अपने उत्तराधिकारी की घोषणा नहीं कर पा रहे थे और न ही दोनों पुत्रों का विवाह। क्योंकि प्रथानुसार रामगुप्त का विवाह पहले होना था। आसपास के सभी रामगुप्त के चरित्र से परिचित थे, इसलिए कोई राजा अपनी कन्या का विवाह उससे करने को तैयार न था।

एक बार शक एवं हूण जाति के लोगों की सेना का पीछा करते हुए वे हिमालय के पास बसे छोटे राजाओं के यहाँ पहुँच गये। वे राजा भी इन शक एवं हूण जाति के लोगों के आक्रमण से त्रस्त थे। ये हिमालय के उस पार से संकरे पहाड़ी रास्तों से भारत के पर्वतीय राज्यों पर आक्रमण करते थे। समुद्रगुप्त ने इन्हें पराजित किया और खदेड़ दिया। इसी क्रम में उन्हें कामरूप के राजा चित्रसेन के यहाँ दस दिनों तक विश्राम करना पड़ा। वहाँ राजा की कन्या ध्रुवस्वामिनी ने उनकी बहुत सेवा की और उसकी सेवा से प्रसन्न होकर समुद्रगुप्त ने उसे पुत्रवधू बनाने की इच्छा प्रकट की। राजा चित्रसेन बहुत प्रसन्न हुए। चूँकि उन राज्यों में विवाह से पहले लड़की की सहमति जरूरी थी। राजा चित्रसेन ने समुद्रगुप्त से निवेदन किया कि वे राजकुमार को कुछ दिनों के लिए आतिथ्य ग्रहण करने के लिए उनके महल में भेज दें। सम्राट समुद्रगुप्त ने इस बात के लिए अपनी सहमति दे दी और अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) की तरफ प्रस्थान किया।

पाटलिपुत्र पहुँचकर समुद्रगुप्त ने अपने एक मंत्री शिखर स्वामी के साथ दोनों पुत्रों रामगुप्त और चन्द्रगुप्त को सेना की एक टुकड़ी के साथ कामरूप की तरफ रवाना किया। दरअसल अब समुद्रगुप्त का स्वास्थ्य तेजी से गिरता जा रहा था और वे दोनों पुत्रों की शादी और उत्तराधिकारी का निर्णय कर देना चाहते थे। उनकी इच्छा चन्द्रगुप्त को सम्राट बनने की थी, लेकिन दरबारियों का एक गुट रामगुप्त को ही युवराज बनाना चाहता था, ताकि वे अपनी मर्जी चला सकें। इसलिए वे परंपरा की दुहाई देकर चंद्रगुप्त को युवराज बनने से रोकना चाहते थे और सम्राट समुद्रगुप्त अनिर्णय की स्थिति में पड़े हुए थे।

रामगुप्त और चन्द्रगुप्त मंत्री शिखर स्वामी के साथ कामरूप के लिए रवाना हो गये। यात्रा लंबी और कष्टदायक थी। कामरूप से 100 मील की दूरी पर रामगुप्त को पड़ाव डालना पड़ा, क्योंकि तेजी से वर्षा होने लगी और रामगुप्त बीमार पड़ गया। कुछ सैनिक वहीं रुक गये और चन्द्रगुप्त शिखर स्वामी के साथ कामरूप की ओर चला गया। कामरूप पहुँचने पर राजा चित्रसेन ने चन्द्रगुप्त और शिखर स्वामी का काफी सम्मान किया। भ्रमवश उन्होंने चन्द्रगुप्त को ही युवराज समझ लिया। मंत्री शिखर स्वामी तो खाने–पीने में ही जुट गया और चन्द्रगुप्त को किसी ने स्थिति स्पष्ट करने का अवसर ही नहीं दिया और वैसी ही स्थिति बन गयी, जैसा कि आजकल की फिल्मों में देखा जाता है। ध्रुव देवी चन्द्रगुप्त को युवराज समझकर उसकी ओर आकृष्ट हो गयी और धीरे–धीरे चंद्रगुप्त के हृदय में भी प्रेम का अंकुर फूटने लगा।

ध्रुवदेवी का चंद्रगुप्त के साथ प्रेम बढ़ता ही गया और वह इस बात से अनजान थी कि वह किस चक्रव्यूह में फँसती जा रही है। उसे क्या–क्या करना पड़ेगा, यह सब भविष्य के गर्भ में था। इतने प्राचीन काल में एक स्त्री द्वारा एक नपुंसक पति का अस्वीकार और वह भी धर्म के अनुमोदन से, यह एक ऐसा क्रांतिकारी कर्म था, जो इस समय बिल्कुल ही अज्ञात था और आज भी उतना ही सार्थक है। पुरुष जब चाहे स्त्री का त्याग करने में समर्थ है और यदि यही पहल कहीं स्त्री की ओर से हो जाती है, तो आज भी पुरुष इसे स्वीकार नहीं कर पाता। यह ऐसी कहानी है, जो आज भी सत्य है और प्राचीनकाल से खोजकर लायी गयी है।

प्रायः पंद्रह दिन बाद जब वर्षा रुक जाती है, तब रामगुप्त कामरूप की तरफ निकलता है। रास्ते में उसे अपने पिता सम्राट समुद्रगुप्त की मृत्यु हो चुकी है और दरबारियों और परंपरा के दबाव में आकर उसे सम्राट घोषित कर दिया गया है। इस खबर को सुनकर और रामगुप्त को देखकर कामरूप के राजा चित्रसेन और ध्रुव देवी सन्नाटे में आ जाते हैं। रामगुप्त पाटलिपुत्र लौटने के पहले ध्रुव देवी से विवाह की इच्छा प्रकट करता है। न चाहते हुए भी राजा चित्रसेन इस विवाह की स्वीकृति दे देते हैं और ध्रुव देवी को बाध्य होकर रामगुप्त से विवाह करना पड़ता है।

लेकिन विवाह की रात्रि को ही शकराज कामरूप पर आक्रमण कर देता और पहाड़ियों से उतरकर राजपथ पर जानेवाले मार्ग को रोक देता है। रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुव देवी और कामरूप के राजा चित्रसेन सभी इन पहाड़ियों में कैद हो जाते हैं। शकराज को समुद्रगुप्त की मृत्यु का समाचार मिल जाता है। इस अवसर का लाभ उठाकर शकराज गुप्त साम्राज्य को अपने अधीन कर लेना चाहता है। शकराज रामगुप्त को यह संदेश भेजता है कि

उसका विवाह संबंध महादेवी ध्रुवस्वामिनी से निश्चित हो चुका था, लेकिन बीच में ही सम्राट समुद्रगुप्त की विजययात्रा में महादेवी के पिता ने उपहार में उन्हें गुप्तकुल में भेज दिया, इसलिए वे महादेवी को शकराज के पास भेज दें और शक सामंतों के लिए मगध सामंतों की स्त्रियाँ भेज दें। यदि यह स्वीकार न हो तो युद्ध करें। शिविर दोनों ओर से घिर चुका है और राजपथ तक जाने का मार्ग अवरुद्ध हो चुका है। यह बात मानी जाय या मरकर कुल मर्यादा की रक्षा की जाए। इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं।

रामगुप्त प्राणरक्षा के लिए यह शर्त मानने के लिए तैयार हो जाता है। इसपर ध्रुवदेवी कहती है पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी संपत्ति समझकर उनपर अत्याचार करने का अपना अभ्यास बना लिया है। यदि रामगुप्त उसकी रक्षा नहीं कर सकता, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकता तो महादेवी पर उसका कोई अधिकार नहीं है। इसपर रामगुप्त कहता है कि वह सिर्फ उपहार देने की वस्तु है। उसके पिता ने उपहारस्वरूप उसे सम्राट समुद्रगुप्त को दिया और अब उसी सम्राट समुद्रगुप्त का पुत्र उसे उपहार में शकराज को देना चाहता है तो इसमें गलत क्या है?रामगुप्त अपने मंत्री को शकराज के पास संधि संदेश ले जाने का आदेश देता है और यह भी कहता है कि ध्रुवदेवी को पालकी पर बिठाकर शकराज के पास भेज दिया जाए।

निराश और हताश होकर ध्रुवदेवी कटार से आत्महत्या करने का प्रयास करती है। इसी समय चन्द्रगुप्त वहाँ आता है और ध्रुवदेवी से इस बात का कारण पूछता है। ध्रुवदेवी उसे कहती है कि जिस तरह चन्द्रगुप्त चामर–सज्जित अश्व पर चढ़कर उसे उसके पिता के महल से लेने आया था, उसी तरह वह ध्रुवदेवी को शकराज के शिविर तक पहुँचा दे। सारी बातें सुनकर चन्द्रगुप्त स्तब्ध हो जाता है और अपने आपको ध्रुवदेवी का अपराधी मानने लगता है और कहता है कि जिस परंपरा का सम्मान देते हुए उसने राजसिंहासन का त्याग किया, वह उस परंपरा को त्याग नहीं सकता और अपने प्राण देकर भी वह गुप्तवंश की मर्यादा की रक्षा करेगा। उसके हृदय के अंधेरे में प्रथम किरण सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक डाल दिया था, उसकी हर विपत्ति से रक्षा करेगा। फिर चन्द्रगुप्त कहता है कि वह ध्रुवदेवी के बदले स्त्री रूप धरकर डोली में बैठकर अन्य सामंतों की स्त्रियों के साथ शकराज के पास जाएगा। इसपर ध्रुवस्वामिनी कहती है कि वह भी उसके साथ चलेगी। चन्द्रगुप्त स्त्री वेश धारण कर अन्य सामंत स्त्रियों के साथ डोली में बैठकर जाता है। ध्रुवदेवी भी चन्द्रगुप्त के साथ उसी की डोली में बैठ जाती है। शकराज यह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न होता है और कहता है कि आज उसके पूर्वजों की आत्माओं को शान्ति मिलेगी। उनकी पराजयों का यह प्रतिशोध है। शक लोग गुप्तवंश वालों की दृष्टि में जंगली, असभ्य, और बर्बर हैं, तो उनकी प्रतिहिंसा भी उसी बर्बरता के अनुकूल होगी। वह प्रसन्नता से सिंहासन के पास टहलने लगता है। उसके कुछ सामंत प्रवेश करते हैं, फिर नर्तकियों का दल वहाँ आता है। शकराज अपने सिंहासन पर बैठ जाता है, फिर सामंत भी अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं। नृत्य शुरू हो जाता है और नर्तकियाँ सबों के आगे मदिरा (शराब) का प्याला प्रस्तुत करती हैं। सभी लोग मदिरा का पान करते हैं। मदिरा पीकर सामंत लड़ने लगते हैं, तो शकराज उन्हें वहाँ से भगा देता है। वह ध्रुवदेवी की प्रतीक्षा में व्याकुल हो जाता है। फिर रात्रि के प्रथम प्रहर की समाप्ति की सूचना देनेवाला तूर्यनाद बज उठता है। शकराज की व्याकुलता बढ़ती जाती है। तभी एक सैनिक आकर ध्रुवदेवी की आगमन की सूचना देता है और उससे अकेले में मिलना चाहती है। शकराज इसपर अपनी स्वीकृति दे देता है। सभी लोग वहाँ से चले जाते हैं और एकांत हो जाता है। लेकिन शकराज इस बात से अनजान था कि दुर्ग के ऊपर नील–लोहित रंग का धूमकेतु आकाश में उग आया था और अविचल भाव से दुर्ग की ओर भयानक संकेत कर रहा था। यह भयावनी पूंछवाला धूमकेतु जो नक्षत्रमंडल का अभिशाप था, आकाश में उच्छट्रिकल पर्यटक की तरह दुर्ग के ठीक ऊपर खड़ा और एक महाभयानक संकेत दे रहा था।

तभी प्रहरी आकर ध्रुवदेवी के आगमन की सूचना देता है। शकराज अनुमति दे देता है और ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त (जो स्त्री वेश में है) के साथ प्रवेश करती है। नजदीक आकर चन्द्रगुप्त अपने वस्त्रों में छुपाए तलवार को निकालकर शकराज को सावधान करता है। शकराज भी तलवार निकालकर युद्ध के लिए अग्रसर होता है। युद्ध में शकराज की मृत्यु हो जाती है। बाहर दुर्ग में कोलाहल होता है और सामंत लोग 'ध्रुवस्वामिनी की जय हो' का हल्ला मचाते प्रवेश करते हैं।

फिर एक कक्ष में ध्रुवदेवी, चन्द्रगुप्त और अन्य सामंत एकत्रित होते हैं। आगे की योजना बनाते हैं। सामंत लोग रामगुप्त जैसे राजपद को कलंकित करनेवाले व्यक्ति को सम्राट मानने से इन्कार कर देते हैं। रामगुप्त इससे क्रुद्ध होकर सामंतों एवं चन्द्रगुप्त को बंदी बनाने का आदेश देता है। ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त को प्रतिवाद करने को कहती है, लेकिन परंपराओं से बंधा चंद्रगुप्त कुछ नहीं कर पाता। इस पर रामगुप्त अपने सैनिकों को ध्रुवदेवी को बंदी बनाने का आदेश देता है। इस पर चन्द्रगुप्त अपनी तलवार और रामगुप्त की कुटिलता की प्रतिमूर्ति बताते हुए कहता है, वह अब और बर्दाश्त नहीं करेगा। इस पर रामगुप्त पीछे से चन्द्रगुप्त पर तलवार से आक्रमण करना चाहता है। इसे देखकर ध्रुवदेवी एक सामंत की तलवार छीनकर रामगुप्त को सिर धर से अलग कर देती है।

इसके बाद सामंत और पुरोहित चन्द्रगुप्त का राजतिलक कर देते हैं और पुरोहित चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी का विवाह सम्पन्न कराते हैं। फिर सब लोग पाटलिपुत्र आ जाते हैं और चन्द्रगुप्त अपनी माता (सम्राट समुद्रगुप्त की पत्नी) और दादी (सम्राट चंदगुप्त १ की पत्नी) का आशीर्वाद लेकर राजसिंहासन पर बैठ जाते हैं। उनके विवाह को सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है। यह उस समय के विचार से बहुत बड़ी घटना थी, क्योंकि एक तो ध्रुव देवी विधवा थी और पतिहंता भी। राजसिंहासन पर बैठकर चंद्रगुप्त ने 'विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और सोने के सिक्के ढलवाये, जिसमें उसका नाम 'चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य' लिखा गया। वैसे कुछ मनोवृत्ति वालों को चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न, असंभव और कुरुचिपूर्ण लगा।

लेकिन ध्रुवदेवी का चन्द्रगुप्त से विवाह हो जाने के पश्चात् भी दोनों पति–पत्नी का संबंध नहीं बना पा रहे थे। क्योंकि रामगुप्त और शकराज की मृत्यु के समय के घटनाक्रम के कारण उन्हें जो मानसिक यंत्रणा और संत्रास मिला था, उसके कारण दोनों ने कुछ समय तक पति–पत्नी का संबंध नहीं बनाने का निश्चय किया। रामगुप्त की पत्नी होने के कारण चंद्रगुप्त उसे भाभी का रिश्ता समझना पड़ा। फिर ध्रुवदेवी उम्र में उससे कुछ बड़ी थी। फिर भी धीरे–धीरे ध्रुवदेवी के मन में चन्द्रगुप्त के लिए प्रेम जागृत होने लगा और शारीरिक संबंध बनाने के लिए वह अपने आपको तैयार करने लगी। इसी बीच ध्रुवदेवी की तबीयत कुछ खराब हो गयी। यह समाचार सुनकर उसके पिता चित्रसेन ने उसकी छोटी बहन महिमा देवी को उसकी देखभाल के लिए ध्रुव देवी के पास भेजा। वह ध्रुवदेवी की बीमारी के समय उसकी देखभाल करने लगी। वह चन्द्रगुप्त की हमउम्र थी। चन्द्रगुप्त धीरे–धीरे उसकी ओर आकर्षित होने लगा। ध्रुवदेवी को इसका आभास हुआ। वह चन्द्रगुप्त से बहुत प्रेम करती थी और शकराज से रक्षा करने के प्रतिदान में उसने चन्द्रगुप्त के जीवन से हट जाने का विचार बना लिया। ताकि चन्द्रगुप्त सुखी जीवन बिता सके उसकी छोटी बहन के साथ। इसी क्रम में उसे बुद्ध भगवान का प्रवचन सुनने को मिला और उसे सांसारिक सुखों से विरक्ति होने लगी। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उन्होंने सांसारिक बंधनों को तोड़कर संन्यासी जीवन बिताने का निश्चय कर लिया और भगवान बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और भगवान बुद्ध के आश्रम में चली गयी।

कहानी

एक दीप धरम का

सुभद्रा मिश्रा
राजनंद गाँव, डोंगरगढ़
छत्तीसगढ़
मो. 8269594598

दीवाली की साँझ। अपने ही शहर की छटा देखते विमुग्ध होते जा रहे थे। देवताओं के राजा इंद्र की नगरी क्या इससे भी ज्यादा ऐश्वर्यमयी होती होगी।

जयस्तंभ रोड। विस्तृत मार्ग के दोनों ओर बिजली के रंग बिरंगे लट्टुओं से जगमगाती विशाल अट्टालिकाएँ, बालकोनियों, छतों, अटारियों में त्वरितगति से आती–जाती सोलहों शृंगार से सजी सौभाग्यवती रमणियाँ, स्वस्थ, सम्पन्न, सुवेशित पुरुष। अट्टालिकाओं के सामने खुली जगह पर गृहलक्ष्मियों द्वारा सजायी गयी विमुग्धकारी रंगोलियाँ। अपनी अट्टालिकाओं के सुसज्जित द्वारों से दीपों से भरी जगमगाती थाल लिये निकलती वस्त्राभूषणों की आभा से दमकती लक्ष्मीस्वरूपा कुलवधुएँ। उनसे दीप ले लेकर घरों के सामने बने सुदीर्घ चबूतरे पर दीपों की कतार सजाती देवकन्याओं–सी शुभांगी बालिकाएँ।

महानिशा धीमें–धीमें बढ़ी चली आ रही है। वैभव एवं श्री की देवी महालक्ष्मी के आगमन का मुहूर्त निकट आ रहा है। सुदूर मंदिरों में घंटा–ध्वनि गूँजने लगी है। अट्टालिकाओं में विराजे पंडितगण श्रीसूक्त उच्चारने लगे हैं। बीच–बीच में गूँज उठते हैं शंख ध्वनि के उद्घोष। उमंग और उल्लास में नेत्र रक्तिम हो रहे हैं। उल्लासित युवक आतिशबाजियों की चकचौंध से जमीन आसमान एक किये दे रहे हैं। धाँय–धाँय छूटते फटाके–बम बच्चों को मारे खुशी के पागल किये दे रहे हैं। आसमान अपने विस्फारित नेत्रों से धरती का यह अपरूप ऐश्वर्य निहार रहा है। सारा वातावरण एक रहस्यमयी–सी अलौकिकता में डूबता जा रहा है, माने आतुर हो आकुल पुकार–सी कर रहा हो...पधारो, पधारो...हे श्रीसम्पन्नता की देवी महादेवी...महालक्ष्मी पधारो, म्हारी नगरी मा पधारो...म्हारी घर मा विराजो...।

विस्फारित नेत्रों से ताकते आह्लाद में डूबे हम बढ़े जा रहे हैं। आगे खंडूपारा, यहाँ भी वही चकाचौंध, वही विमुग्धकारी भव्यता...विस्मयकारी अलौकिकता...आकुल प्रतीक्षा...पधारो, पधारो हे महादेवी महालक्ष्मी म्हारी गलियन में भी...म्हारे घर में भी।

आगे बैंक मोड़, गोलबाजार रोड...हम अपने आपमें नहीं हैं। किसी देवलोक में उड़े चले जा रहे हैं। शहर की सारी गलियाँ, चौबारे आज हर्षोल्लास में दपदपाते मानो किसी पराशक्ति के आगमन का आभास कराते मंत्रमुग्ध किये जा रहे हैं।

महान घड़ियाँ हैं ये...विमुग्धकारी...शब्दातीत कि हमारी उड़ान थम–सी जाती है। सड़क से हटकर कुछ दूर एक निर्जन–सी जगह में एक एकांत–सा घर नजर आ रहा है। बेहद पुराना, जर्जर, मिट्टी की दीवारें, खपरैल का छप्पर। पहले भी देखा था इस वीरान से पुराने घर को। मगर आज उसमें रोशनी दीख रही थी। घर के सामने एक दीपक जल रहा था। कुछ विशेष–सा ही लग रहा वह दीपक। दरवाजे पर एक वृद्धा–सी नारी मूर्ति भी नजर आ रही थी। मैं पलभर चकित–सी सोचती हूँ कि अनायास ही मेरे कदम उस ओर बढ़ जाते हैं।

छुई मिट्टी से बड़ी सुघड़ता से चिकनी पोती गई माटी की जर्जर दीवारें, गोबर से स्वच्छ सुंदर लीपा गया सामने का हाता। चावल पीसकर बनाई गई अनूठी ग्रामीण अल्पना। अल्पना के बीचोबीच रखा अपनी सिंदूरी आभा बिखेरता शांत, स्निग्ध एक दीपक।

अरे! धरम तें यहाँ...वृद्ध नारी मूर्ति को देखते ही मेरे मुँह से निकल गया।

हव नोनी में इंहचे रथों (हाँ बेटी! मैं यहीं रहती हूँ)...मुझे देखते ही वह सहज सरलता से हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी...तें कब आये?में भी इहचें रथों.. .मैं गौर से उसके चेहरे की तरफ देखते कहती हूँ–तें बने बने?(तुम कुशल तो हो न?)

हव नोनी में बने बने हों...वह स्निग्ध सरलता से कहती है। मुझे आघात–सा लगता है। यह क्या पूछ बैठी मैं। जिंदगी में कभी यह बने बने रह पाई। तिस पर इस बुढ़ापे में। इस नितांत निर्जन स्थान में, निपट अकेली।

बइठ न नोनी...वह दीवार से सटी मूँज की छोटी–सी खटिया बिछा देती है।

हम एक दूसरे की तरफ देखने लगते हैं। महालक्ष्मी के आगमन की इन परम सौभाग्यशाली घड़ियों में क्या हमें इस जनम भर दुख दुर्भाग्य में पिसती, अपशकुनी–सी नारी के पास बैठना चाहिए। मगर मैं बैठ जाती हूँ। मेरी साथिने भी।

धरम के बारे में बता ही दूँ। बचपन से जानती हूँ इसे। ठीक हमारे घर के सामने ही तो रहती थी यह। अपने पति और दो बेटियों के साथ। पति उधो सिंह आठवीं तक पढ़ा था। सुनारी का छोटा–मोटा धंधा करता था। मकान वैसा ही था, जैसा उन दिनों इस गाँवनुमा कस्बे के थे। मिट्टी की दीवार। खपैरल का छप्पर। मिट्टी का ही फर्श। मगर था बड़ा। फैला हुआ। यह उनका पैतृक मकान था। मकान के आधे हिस्से में उसका छोटा भाई माधो सिंह रहता था। सत्पनीक। निःसंतान। आँगन साझा था। माधो सिंह भी मामूली पढ़ा लिखा, छोटा–मोटा सुनारी का धंधा करता था। पत्नी चंपाकली ऊँची पूरी, हृष्ट पुष्ट, गोरी चिट्टी, अद्भुत सुंदरी। जेबर–कपड़ों में दमकती, दबंग, बड़बोली। मुहल्ले की औरतें सहमतीं उससे। वह हमेशा अपने इर्द–गिर्द दो–चार चमचियें रखती। लगभग सभी जानते थे कि वह कुछ गड़बड़ कामों में लिप्त रहती है। पिता से चोरी के जेवरात गलवाती है। गांजा–चरस की अफरा–तफरी करती है। अपने इर्द–गिर्द की युवा औरतों को पुलिस को खुश करने भेजती है। पति को तो वह आये दिन लताड़ती रहती। बुरी तरह गरज–गरजकर। अपनी जनानी आवाज में खुशामदी ढंग से विरोध करता माधो सिंह बड़ा ही दयनीय लगता। हास्यास्पद भी। वह हार खाती थी तो सिर्फ एक आदमी से। अपने जेठ उधो सिंह से। उधो सिंह उसे फूटी आँख न पंसद करता। एक बार भयंकर युद्ध के दौरान उधो सिंह ने अपने सुनारी औजार से उसपर वार भी कर दिया था। फिर तो सड़क में लोट–लोटकर वह कोहराम मचाया कि पूरा मुहल्ला पूरी विरादरी ही जमा हो गयी। उधो सिंह ने राई रत्ती परवाह नहीं की। मामला बड़ी मुश्किल से ठंडा हो पाया था।

मगर उधो सिंह जल्दी सिधार गये। सिधारने के पहले अपनी दोनों किशोरी बेटियों का अच्छे से विवाह सम्पन्न करा गये। घर में बच गयी सिर्फ धरम। धरम अपनी देवरानी के सर्वथा विपरीत। गहरा साँवला रंग। इकहरा

शरीर। मझोला कद। ठेठ छत्तीसगढ़ी नाक नक्श। छत्तीसगढ़ी ढंग से पहनी गई मामूल साड़ी यानी लुगड़ा। ढीलाढाला पोलखा (ब्लाउज)। गले में चाँदी की हँसुली, कानों में खिनवा, हाथों में ऐंठी। काम की बातों के अलावा कुछ और बोलना–बतियाना उसे सूझत ही न था। मुहल्ले में उपेक्षित लगभग नगण्य। मगर जाने क्यों निहायत नगण्य–सी दिखनेवाली वह औरत उस जबरजंग देवरानी को बर्दाश्त ही न हो। उधो सिंह के जाने के बाद तो ज्यादा ही उलझने लगी...तें अपन लुगड़ा मोर डोरी में काबर (क्यों) सुखाये। तोर फूल के पेड़ अँगना भर में कचरा करथें। मोर बाल्टी से पानी काबर भरें। मोर चीज बसूत ला काबर छूथस। मैं दीवार खड़ा करहूँ।

और सचमुच में उसने ऐसी दीवार खड़ी की कि धरम के हिस्से में आँगन नाम की कोई चीज ही नहीं रह गई। आँगन का कुआँ भी चंपाकली के हिस्से में।

धरम किसके पास फरियाद करने जाए। मुहल्ला तो था ही गरीब बेसहारा के प्रति असंवेदनशील। बिरादरी वालों का भी वही हाल हारकर धरम मुँहअंधेरे ही उठाकर स्नाद आदि से निवृत्त होने तालाब जाने लगी। घर लौटकर गीली साड़ी में ही सार्वजनिक कुएँ से पानी भरकर लाती। चंपाकली की कटूक्तियों चलती ही रहतीं...पानी लेकर आती है तो मेरी दुआरी में छलका देती है। कीचड़ करने के लिए। राँधती है तो धुआँ मेरी तरफ कर देती है।

उधो सिंह की जो थोड़ी–सी जमापूँजी थी वह देखते ही देखते समाप्त हो गयी। धरम के वे थोड़े से चाँदी के गहने भी। मुहल्ले में पढ़ा–लिखा सम्पन्न कहने को हमारा ही घर था। सो धरम हमारे घर काम माँगने आई। बहुत हिम्मत करके। क्योंकि उसकी बिरादरी की औरतें घरों में काम करने नहीं जाती थीं। जूठे बर्तन माँजने तो हर्गिज नहीं। मगर ब्राह्मण के घर काम सहा जा सकता था। तब भी माँ ने उसे दूसरे ही काम दे दिये थे...चाँवल फटकना, चुनना, गेहूँ धोना सुखाना पिसाना। अचार पापड़ बड़ियों के मसाले तैयार करना।

मगर चंपाकली माँ को ही जब–तब कोंचती रहती...ये जिंदगी में कभी अचार बनाई है, जो इससे मसाले तैयार करवाती हो बाई। मैं दूसरी दूँगी बढ़िया काम करनेवाली। इतनी तो गंदी रहती है। कैसे सहती हो।

माँ चंपाकली को मुँह न लगाती। मगर धरम को कभी काम देने से परहेज करने लगीं। काम के लिए भटकती धरम को आखिर सेठ गोविंदलाल के घर का काम मिल गया। सेठजी का सारी भरकम संयुक्त परिवार। काम ही काम। दिनभर खटती रहती। साँझ ढले घर लौटती तो चंपाकली की कटूक्तियाँ शुरू... बनिया घर के जूठा मांजत हे, हमार नाक कटात हे, मरही तो कोनो तोर लास नहीं छूही।

धरम को तंग करने,प्रताड़ित करने में चंपाकली को आनंद मिलता। उसकी चमचियें और आक्रामक बन जातीं। बाकी सब धरम का तमाशा देखते। कभी धरम काम से लौटकर धर का दरवाजा खोलती तो पाती कि पानी कि गगरी गायब। कभी लोटा गायब। कभी गिलास गायब। धरम नीम अँधेरे में अपने दरवाजे की ड्योढ़ी पर बैठी अपनी कमजोर आवाज में मानो हवाओं से फरियाद करती रहती... में का करों दाई... में का करों ओ ऐमन फाँदके मोर जम्मों बरतन ला डोहारत हें। इतना सुनना था कि चंपाकली का गिरोह नोच खाने के लिए टूट पड़ता...वाह, हम तोर थाली कटोरी चुराबो। हमार घर बरतन के कमी हे का। जा पुलिस बुलाले। तलासी ले ले।

सारे बर्तन गायब हो गये तो धरम मिट्टी की हँड़िया, परई लाकर खाना बनाने लग गयी। उसमें भी उसके भात में गंदगी पड़ी मिलती। कभी हँड़िया हो फूटी मिलती। कभी परई। एकाध बार गोविंद सेठ स्वयं समझाने आये। चंपाकली ने गोविंद सेठ से तो खूब कायदे से बातें कीं, मगर उनके जाते ही धरम की तो चमड़ी ही उधेड़ दी...गोविंद सेठ तोर खसम है का?ओखर धौंस दिखवत हस। सहते–सहते धरम बूढ़ हो गयी। अशक्त भी। आखिरकार सेठजी ने सख्त कदम उठाते हुए मकान का धरमवाला हिस्सा ही बिकवा दिया।

इस समय कभी न झाँकनेवाले बेटी–दामादों ने आकर भारी बखेड़ा किया कि धरम सारा पैसा उन दोनों के नाम कर दे और बारी–बारी से दोनों के घर रहे। मगर सेठजी ने सारा पैसा धरम के नाम बैंक में जमा कर दिया, ताकि वह ब्याज से गुजारा कर सके। धरम के रहने के लिए उन्होंने अपने एक पुराने टूटे–फूटे मकान में व्यवस्था कर दी, जहाँ उनकी कुछ बूढ़ी गायें और चारा–भूसा रहता था। दामादों से कह दिया...इसके मरने पर आना और ठीक से क्रिया करम करके पैसा आपस में बाँट लेना। अभी भागो यहाँ से।

मैं लंबे समय तक अपने शहर से बाहर ही रही थी। पहले पढ़ाई के सिलसिले में। बाद में विवाह के कारण। बरसों बाद लौटी और जानना चाहा कि धरम अब कहाँ है, कैसी है, तो यही सब पता चला।

सेठजी मोरबर बहुत करीन नोनी (सेठजी मेरे लिए बहुत किये बेटी)...धरम मुझे कृतज्ञतापूर्वक बता रही थी...भगवान उनखर बालबच्चा ला सुखी रखे। मरहूं तो बेटी दामाद आबे करहीं...उसके चेहरे पर सहज विश्वास, शांति और तरलता थी।

जनमभर की प्रताड़ित, लोगों के उपहास का पात्र बनी, अपने सगे संबंधियों से उपेक्षित, पतिगृह से उजाड़ी गयी, बेटियों के, नाती नातियों के प्यार–दुलार भरे माहौल से सर्वथा वंचित, जीवन में कभी भी न्याय न पानेवाली, जीवन की डूबती साँझ इस निर्जन एकांत में गुजारती धरम के शांत तरल चेहरे पर न कोई शिकायत थी, न खिन्नता, न अवसाद। सारी अवमाननाओं की कितनी सहजता से स्वीकार कर लिया था उसने।

वो दुखाही चंपाकली तोला बड़ा दुख दीस (वह दुष्ट चंपाकली ने तुझे बड़ा दुख दिया)...मेरे मुँह से निकल गया।

कोनो कोई ला दुख नई दे नोनी...वो सब मोर करम के दंड रहिस होही। वो ह तो ओखी ए। (कोई किसी को दुख नहीं देता बेटी। वह तो मेरे कर्मों का दंड रहा होगा। वह तो एक बहाना, एक माध्यम थी।)

मै अवाक् रह गयी। जनम भर जिसने प्रताड़ना दी। घर से बेघर कर दिया। उसके लिए कोई दुर्भावना कोई मलिनता नहीं इसके मन में।

वही कह रही थी...अपने लिये भात रांध लेती हूँ। चारा भूसा निकाल के गायों को दे देती हूँ। गायें सब मुझसे हिलमिल गई हैं।

जाने गायें हमारी बातें सुन रही थीं या क्या। पुकार उठी बाँ...बाँ... माँ...माँ।

क्या कहूँ इसे। धैर्य, सहनशीलता, क्षमा और आस्था की इस जीवंत मूर्ति के आगे मुझे अपने सारे शब्द व्यर्थ से लगने लगे। समय हो गया था। उसे विदा लेकर अपने घर की ओर कदम बढ़ाते हुए एक बार फिर पलटकर देखा। घर के सामने हाते पर खड़ी वह हमें जाते हुए देख रही थी...सहज, शांत, स्निग्ध। सिंदूरी आभा बिखेरता उसका वह दीपक भी वैसा ही जल रहा था... सहज, शांत, स्निग्ध जाने क्यों मुझे लगा, अगर मुझे यह दृश्य देखने को न मिलता, तो नगर के चारों ओर छाई यह चकाचौंध भरी भव्यता मुझे खोखली ही लगती। बेजान ही लगती। इस एक दीप ने मानो इस नगर की भव्यता में प्राण डाल दिये हैं। हाँ, उस नगर की सारी भव्यता, सारा ऐश्वर्य फीका पड़ जाता है, अगर उसके किसी कोने में धैर्य, सहनशीलता, क्षमा और आस्था का कोई दीप अपनी शांत, स्निग्ध, आभा न बिखेर रहा हो।

अभिमत

पल भर के लिए

डॉ. जितेन्द्र प्रसाद सिंह
पूर्व प्राध्यापक
आर. के कॉलेज, मधुवनी
9430289502

कहानी जीवन के छोटे अंश को प्रस्तुत करती है। एक अंग्रेज लेखक ने इसको 'सपबम वि सपमि' कहा है। साहित्य रचना किसी विचार के लघु बिन्दु से जन्म लेती है। इस विन्दु के अनेक लघु और विस्तारित स्वरूप होते हैं। कहानी से आदमी दूर हुआ तो अवसाद से ग्रसित हो जाता है। प्रश्न उठता है कि साहित्य की अन्य विधाओं के बारे में क्या कहा जाना चाहिए। साहित्य की विधाएँ संवेदना के स्तर पर आधारित है। कोई गीत लिखता है, तो कोई महाकाव्य या कोई उपन्यास लिखता है। कविता संवेदनाओं का गठित रूप है। यह अलग लेख का विषय है।

आलोक भारती की लघु कथाओं के क्षेत्र में एक प्रयोग की बात है। यह संग्रह छोटी कथाओं का संग्रह है, लगता है गर्मी के समय मुलायम घास पर हम चलते हैं। इनकी कथाओं में छोटे गीतों का प्रवाह है। ये कथाएँ समाज में फैली विसंगतियों पर प्रहार करती हैं। उदाहरण के लिए हम–'दृष्टि भ्रम' को ले लें। शराब के नशे में पुत्र चूर रहता है। अभिभावक को इसका पता नहीं चलता है। यदि बच्चे पर ध्यान नहीं दिया जाय, तो बच्चा बर्बाद हो जाता है। इसलिए आजकल हेलिकॉप्टर परेंटिंग की बात की जाती है। यह कथा सद्यः चित्र को प्रस्तुत करती है। आलोक भारती ने विषय–वस्तु को ऐसे प्रस्तुत किया है कि लगता है विषय–वस्तु कहानी की ही बारीकियों में समायी हुई है। सबसे बड़ी बात है कि इनकी कहानी पाठ नहीं पढ़ाती है।

पुरानी और नई कहानी में एक बहुत बड़ा अंतर है। पुराने जमाने में विचार से कहानी उभरती है। आज के जमाने में कहानी लिखने के क्रम में अचानक विचार उभर आते हैं। शैली किसी युग की विशेषता है या किसी साहित्यकार की विशेषता है। समय के साथ युग–बोध भी बदलता है। आलोक भारती की कहानी आधुनिक है।

आलोक भारती की कहानी एक लघु गीत की तरह है। भागदौड़ की जिंदगी में ऐसी कहानी की बहुत आवश्यकता है। देश की कानून व्यवस्था पर–'कुत्ते की मौत' नामक कहानी चोट करती है। सिपाही घूस के लिए परेशान है। ट्रकवाला घूस से परेशान है। ट्रकवाला सिपाही को ट्रक के नीचे जान–बूझकर दबाकर भाग जाता है। ट्रकवाला ट्रक को लेकर फरार हो जाता है। समाज हृदयहीन हो गया है। संवेदनहीनता सुनामी लहर की तरह है। हर चीज बर्बाद हो जाती है। एक आदमी दुर्घटना का शिकार हो जाता है। सड़क पर तड़पता रहता है। कोई उसे अस्पताल नहीं पहुँचाता है। आदमी मर जाता है। समाज के भिन्न–भिन्न स्तरों की विसंगतियों को भारतीजी ने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया है। कथा साहित्य में यह पुस्तक एक प्रयोग है। बड़ी खूबी यह है कि पुस्तक में मनोविज्ञान की गुत्थ नहीं प्रस्तुत की गयी है। भारतीजी की यह पुस्तक मील का पत्थर की तरह है। विश्वास है कि यह पुस्तक लोकप्रियता के शिखर को चूमेगी।

लघुकथा

सब्सिडीवाला खाता

डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग खड़गपुर कॉलेज
खड़गपुर 721305

स्कूल की एक अधेड़ शिक्षिका उस दिन बहुत परेशान थी। न किसी से बात कर रही थी, न किसी से हँस–बोल रही थी। बस किसी को खोज रही थी। अमूमन वह एक हँसमुख महिला थी और सबके साथ उसका बहुत मधुर संबंध था। उसके साथी शिक्षक उसका बहुत आदर और सम्मान करते थे। लेकिन उस दिन उसकी हरकत सबको आश्चर्यचकित कर रही थी। तभी विद्यालय में एक युवा शिक्षक प्रवेश करता है और उसे देखकर वह तुरंत उसके पास पहुँच जाती है और उसे अति शीघ्र स्कूल से दूर एक बैंक में चलने के लिए कहती है। वह युवा शिक्षक राजी हो जाता है और उसे लेकर बैंक की ओर निकल पड़ता है। रास्ते में वह उस शिक्षिका से इस उतावली की वजह पूछता है, तो वह कहती है–अरे, क्या बताऊँ, कितनी बड़ी विपत्ति आ गयी है। ये बैंकवाले इतने बदमाश हैं कि इन्हें सिर्फ ग्राहकों को परेशान करना ही आता है। शुक्रवार शाम को इन्होंने मुझे मैसेज भेजा कि आपका अकाउंट बंद होनेवाला है। मेरे तो प्राण ही सूख गये। दो दिनों से मैं सोयी नहीं हूँ।

'मैडम! आपका वेतन–खाता तो स्कूल के बगल के बैंक में है।'–युवा लड़के ने उत्सुकता से पूछा।

'हाँ, इसके अलावा भी एक खाता मेरा दूसरे बैंक में है।'

युवा लड़का सोच रहा था, शायद उस बैंक में अधिक ब्याज पाने के लिए मैडम ने कोई मियादी खाता खुलवाया है और मियाद पूरी हो गयी है। लेकिन मैडम का बचत खाता बंद कर दिया गया है, तो मियादी खाता का पैसा कहाँ जाएगा?बैंक आ गया। मैडम शीघ्रता से बैंक की सीढ़ियाँ चढ़ गयी और सीधे बैंक के प्रबंधक के पास पहुँचकर उसे फटकार लगायी। बैंक प्रबंधक ने मैडम का खाता देखा और कहा कि अनेक समय से आपने इस खाते में कोई भी लेन–देन नहीं किया है। इस कारण आपको यह मैसेज भेजा गया है। मैडम ने अपनी भूल स्वीकार की। फिर बैंक के प्रबंधक ने मैडम से उनके बैंक में एक मियादी खाता खोलने का निवेदन किया। मैडम ने असमर्थता जताई और कहा उनका वेतन खाता स्कूल के बगल के बैंक में ही है और उसी में उनके कई मियादी खाते हैं। मैडम और युवा शिक्षक बैंक से निकल गये। रास्ते में मैडम के चेहरे पर असीम शांति का देखकर युवा शिक्षक ने पूछा–'मैडम! यदि आपका समस्त काम स्कूलवाले बैंक से होता है, तो व्यर्थ में आपने इस बैंक में खाता क्यों खुलवाया है?'

मैडम ने सकुचाते हुए कहा, 'यह मेरा गैस सब्सिडीवाला खाता है।'

मान लो मेरे मन

मान लो मेरे मन
कि/बसंत को
गुजर जाना था एक दिन
जो खुशबू थी बगीचे में
और हरियाली
जो छायी हुई थी मेरे चमन में
उसे लूट जाना था एक दिन
पतझड़ के हाथों

मान लो मेरे मन
मेरे आंगन में उतर आई
धूप की किरण को
सिमट जाना था एक दिन
वहाँ पर फिर से
पसर जाना था
अंधेरेपन को
मान लो मेरे मन

कब तक आशातीत रहती
सुबह को स्वर्णिम किरण
और शाम की गोधूलि लालिमा
कबतक
यह आवारा/मतवाला पवन
जगाए रखता मुझको
मेरे मन को

बिना आहट चुपके–चुपके
रात को खिसक आना भी तो
नहीं रोक सकता कोई
आहिस्ते आहिस्ते
हवा का थम जाना भी तो
नहीं रोक सकता कोई
खुली हुई पलकों को
बंद हो जाना था एक दिन
मान लो मेरे मन

माना कि/ख्वाब का टूटना और
हकीकत का रूठ जाना
एक नहीं होता
और सब्र नहीं होता
एक–एक तिनके को चुनकर
घोंसले बनाने के क्रम में
अचानक तूफान का आ उमड़ना
सब्र नहीं होता/मगर
कर्म के हाथों
जीत हो जाती है तकदीर की
मौत के आगे कभी–कभी
हार जाती है जिंदगी भी
मान लो मेरे मन...

फिर भी तो
जीने के लिए
जरूरी है, जिंदा रहना
आओ–
निराशाओं को ढक दें
आशाओं के बादलों से...
क्योंकि
डूबते सूरज को
उगते सूरज को
नहीं रोक सकता कोई
मान लो मेरे मन।

2. आकृति : विकृति

क्रांति की अग्नि में
जल रहे उपनामों में
खुली आँखों देखते हैं
लेकिन–
बुझाने की कोशिशें
नहीं कर पाते हम

हम
कितना स्वार्थी हो गये हैं
अपने ठंडे जिस्म की कंपकंपाहट
मिटाते हैं–
मुट्ठी में कैद
अपाहिजों को जलाकर

गोकि
आदी हो गये हैं/हम
शहीद होते लोगों की
चीखें सुनने के
आजादी माँग रहे लोगों की
तड़पन देखने के
अधिकार के लिए
अनशन कर रहे लोगों को
मरते हुए देखने के
आदी हो गये हैं हम

हम निर्मोही हो गये हैं
अपने ही शक्ल को
दफना कर
हैं अपना ही हाथ सेंकते
फिर भी
अपना घुटना नहीं टेकते।

3. कैसे जिंदा रखूँ मैं यार को

प्यार
तुझे जला देना चाहती है अग्नि
डुबो देना चाहता है सागर।

प्यार
तुझे बार–बार
झटका देना चाहता है भूकंप
तूफान मिटा देना चाहता है
तेरा अस्तित्व

प्यार
तुझे अपमानित करना चाहता है
अपसंस्कृति में पला इंसान
तेरे साथ/व्यभिचार
बलात्कार करना चाहता है शैतान

प्यार
तुझे नहीं जगह देती है धरती
अपने दामन में
पनाह नहीं देता है विस्तृत आकाश

प्यार
किसी का
क्या बिगाड़ा है तूने
क्यों पड़े हैं
सब तेरे पीछे

सदियों से
सलीब पर टंगे प्यार को
जिंदा रखना चाहता हूँ मैं
मारनेवाले हैं हजारों/लाखों
बचानेवाला सिर्फ मैं

सदियों से/तेरे लिए
अकेले लड़ रहा हूँ मैं
बोलो!
आखिर, कैसे जिंदा रखूँ मैं
यार को?
कैसे दिल में
पनाह दूँ मैं प्यार को।

4. इन्सानियत

लाखों में बिकता है कोई
कोई हजारों में
सैकड़ों में
खरीद लिया जाता है कोई
कोई
कौड़ी के मोल में

तुम्हारी खूबी
कौड़ी के मोल
बिक जाने में नहीं
नहीं बिक पानेवाली
उस कीमत में है
जिस कीमत पर
न तो कोई
खरीद सकता है तुमको
न ही बेच सकता है।

सिद्धेश्वर
हनुमाननगर, कंकड़बाग, पटना
मो. 9234760365

5. मछली का स्वाद

तुम्हें भी लग गया था
और तुमने
पूरी की पूरी मछलियाँ खाने का
षड़यंत्र भी
पूरा कर लिया था
आधी मछली को
पापी पेट में पचा लेने के बाद
खुद को
अहिंसक बतलाते हुए
बची हुई आधी मछली को
दिखावे के लिए
फेंक देने की अदा को
क्या कहोगे तुम
जिस्म को
चख लेने के बाद
उसकी निंदा करने से
नहीं बिगड़ता/जिस्म का स्वाद
बिगड़ जाता है
अपने मुँह का जायका...
और/फूलों की गंध को
नथूनों में भर लेने के बाद
उन फूलों को बाजारू बतलाना
बेईमानी/बेइंसाफी/दगाबाजी
नहीं तो और क्या है मेरे दोस्त
गोकि
बाजारूपन/बिकने में नहीं
बाजार के भाव से
खरीदे जाने में भी है
तुम्हारे माथे पर लगा
चंदन का टीका देखकर
संभव है/ समझ बैठे कोई तुम्हें
संत अथवा ज्ञानी
लेकिन वे लोग क्या समझेंगे तुमको
जिसने/हर पग/हर पल ही
धोखा खाया है तुमसे
तुम्हारे नाकाबी, शक्ल से
तुम्हारी फरेबी अदाओं से!
(गोकि = यद्यपि)

जिंदगी प्रतियोगिता है

शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
शिवाभा ए 233, गंगानगर,
मेरठ, मो. 9412212255

और अभी तक नहीं समीक्षित
कभी–कभी, खत लिख देता हूँ

रहती है उत्सकुता बैठी
उम्मीदों की नई झलक में
भोर लिये सोना उठता है
जागरुक बन नई पलक में
किये हुए अनगिन वादों को
जो सपनों में आ जाते हैं
और हुए हैं अभी न दीक्षित
कभी–कभी, खत लिख देता हूँ

खर–पतवारों को मड़ई को
भीगी पड़ी लकड़ियों के घर
बालू की रेती पर लेटी
पसरी हुई ककड़ियों के दर
खपरैली, टूटी ओरी को
जो भादों में रोज टपकती
और हुई है नहीं प्रशिक्षित
कभी–कभी, खत लिख देता हूँ

कोविड 19

मीनाक्षी छाजेड़
टालीगंज, कोलकाता
9432206887

कोविड 19 की स्याह घटा आयी
भयभीत मानव की मनोदशा बिलखायी
चप्पा–चप्पा मरघट बनता
दूर–दूर रिसता जीवन सिसका

खिलखिलाती गाती नाचती झूमती
सारी दुनिया महकती सरसाती
किसी शाप से यूँ शापित हुई
समूची मानव जाति सहमी सकुचाई

नरसंहार बलसंहार प्रकृतिसंहार
सहज जीवन का होता रहा संहार
सिन्धु हड़प्पा मोहनजोदड़ो का
तो था प्राकृतिक संहार, पर अब
एक और कोविड 19 से मानवसंहार

कभी सभ्यता संस्कृति तो कभी संस्कार
बार–बार होता यह घोर विनाश
किस रूप में अंत होगी लालसा
महाशक्ति बनने का नित प्रयास

एक साए में सिमट गये हम
कल क्या होगा नहीं पता
संप्रभुता की भयावह चाह ने
कर डाली कैसी वीभत्स खता।

लोकवाणी

परमादरणीय सम्पादक महोदय,
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

शमीह–शमीहे! अमूल्य पत्रिका सुसंभाव्य का अप्रैल 2020 अंक प्राप्त हुआ। अनन्त आभार! आपने पुरोवाक् में समाज में हितकारी परिवर्तन हेतु साहित्यकार के योगदान का उल्लेख किया है। हितकारी साहित्य सरल भाषा में रचा जाए, जो आम आदमी के सन्निकट हो तो अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होता है। मेरे विचार से इस कसौटी पर 'सुसंभाव्य' पूरी तरह खरी उतरती है। नई पीढ़ी की हिन्दी पढ़ने की आदत तो वैसे ही छूट गयी है। ऐसे में अच्छा साहित्य रोचक भी होना चाहिए। स्थापित रचनाकारों के साथ–साथ नव अंकुरों को स्थान मिलना पत्रिका की सुंदरता बढ़ाता है। जबतक आप–जैसे समर्पित लोग रहेंगे, हिन्दी नये युग में भी महकती रहेगी। ढेरों शुभकामनाएँ!

शुभेच्छु – सूर्यप्रकाश मिश्र
वसंत कटरा, वाराणसी, मो. 9839888743

परमादरणीय सम्पादक महोदय,
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

'अगर अपनी भाषा के लेखकों को आप नहीं पढ़ेंगे, तो आपका और कौन पढ़ेगा' संपादकीय की ये पंक्तियाँ अवश्य चिंतनीय है। हम केवल अपनी रचना के पीछे भागते हैं, जबकि अन्य की रचनाएँ भी हमें बहुत कुछ सिखाती है। वैसे भी लेखन में पढ़ना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है और अभी पत्रिका के प्रति रुचि, लेखक केवल इतना ही रखते हैं कि उनकी रचना छपी या नहीं?

अंक का महत्व रचना से होता है और रचना का महत्व पाठक से। अभी सोसल मीडिया का प्रचलन ज्यादा है। उसमें लोग रचनाएँ डालने लगे हैं। सेकेंड नही बीतता, लोग वाह–वाह, बहुत सुंदर, बहुत बढ़िया जैसे शब्दों से तारीफ का अम्बार लगा देते हैं। लेखक खुश...। मैं इसे लेखन के लिए उत्सावर्धक शैली नहीं मानता। आप शब्दों को पढ़िये और फिर उसके आलोक में टिप्पणी की। खैर....!

इस अंक में रामचन्द्रन जी की कविता में गाँव की छाया है, तो आमोद कुमार मिश्र के गीत में शब्दों के संवहन है। कौतुक जी सर्दी की रात और भ्रमरजी की हिन्दी अच्छी कविता है। आलोक भारती जी ने राष्ट्रभाषा.... को लेकर अच्छा आलेख सुसंभाव्य को दिया है। बेरोजगार आदि पर कई कहानियाँ अच्छी हैं और समीक्षा तो समीक्षा ही है। इनकी प्रशंसा होनी चाहिए। क्योंकि सबसे अधिक मेहनत वही करते हैं। इसके लिए संपादकजी को बधाई।

शुभेच्छु : डॉ0 अनुज प्रभात
फारबिसगंज, मो.7979966155

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303